भारत में नागपूजा और परम्परा

हरिराम जसटा

भारत में नागपूजा और परम्परा

डॉ० सोम पी० शर्मा

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,

अंग्रेज़ी विभाग,

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय

को

जिनके भारतीय संस्कृति,

धर्म एवं कला पर,

गहन एवं विस्तृत अध्ययन एवं प्रेरणा ने,

कदम-कदम पर

कला एवं संस्कृति की असिधारा पर,

आगे बढ़ने का प्रोत्साहन दिया है।
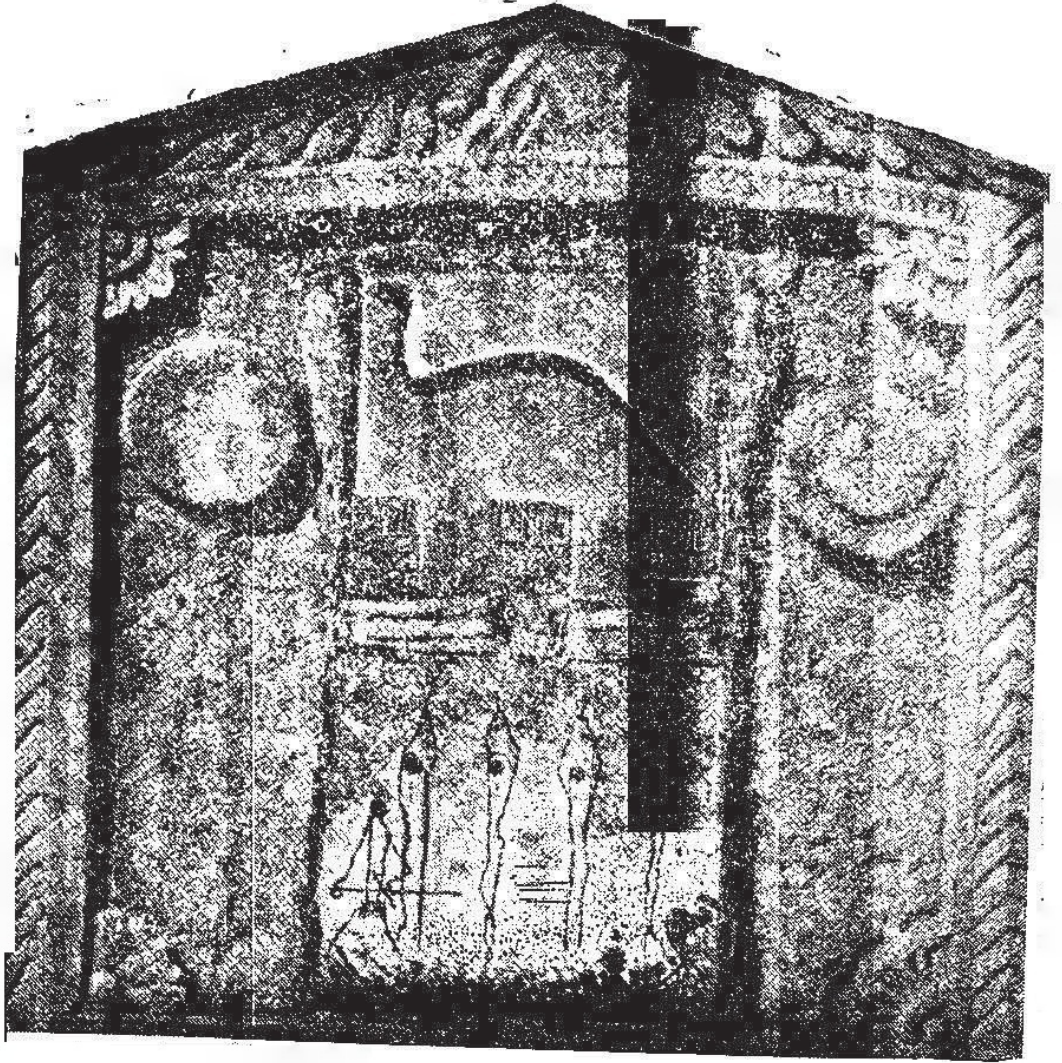
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-110007

इस पुस्तक के बारे में

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य में इस विषय की सर्वप्रथम मौलिक पुस्तक है। इस पुस्तक में पहली बार अलभ्य सामग्री भी संग्रहीत की गयी है, जो फोगल सरीखे विद्वानों को उस समय किन्हीं कारणों से उपलब्ध नहीं हो सकी थी। विद्वान लेखक ने नागपूजा पर गहन अध्ययन के बाद कुछ विचार-बिन्दु पाठकों के सामने रखे हैं, जिनमें प्रमुख हैं—नागपूजा परम्परा का कोई एक आदिस्रोत नहीं है; देश के कुछ भागों में आज भी नागपूजा प्रचलित है; तान्त्रिक शास्त्र तथा कुण्डलिनी योग में नागों को शक्ति का प्रतीक माना गया है; सारी सर्पजाति का नागपूजा परम्परा से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं; भारत के सभी भागों में लोक-परम्परा द्वारा नागपूजा अब भी प्रचलित है।

नागपूजा के अनेक बिन्दुओं को ऐतिहासिक, लोक-परम्परा, उत्पत्ति, भारतीय कला एवं साहित्य के सन्दर्भ में शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर तथा दक्षिण भारत के सन्दर्भ में जहाँ नागपूजा-परम्परा अब भी जारी है, विस्तृत वर्णन किया गया है, जिसके लिए नागपूजा-परम्परा पर हिन्दी जगत के सामने यह ग्रंथ पहली बार प्रस्तुत करते हुए हमें गर्व हो रहा है।

हरिराम जसटा

क्रम

Vasuki Temple, Gatha.

Vasuki Temple, Bhadrawah.
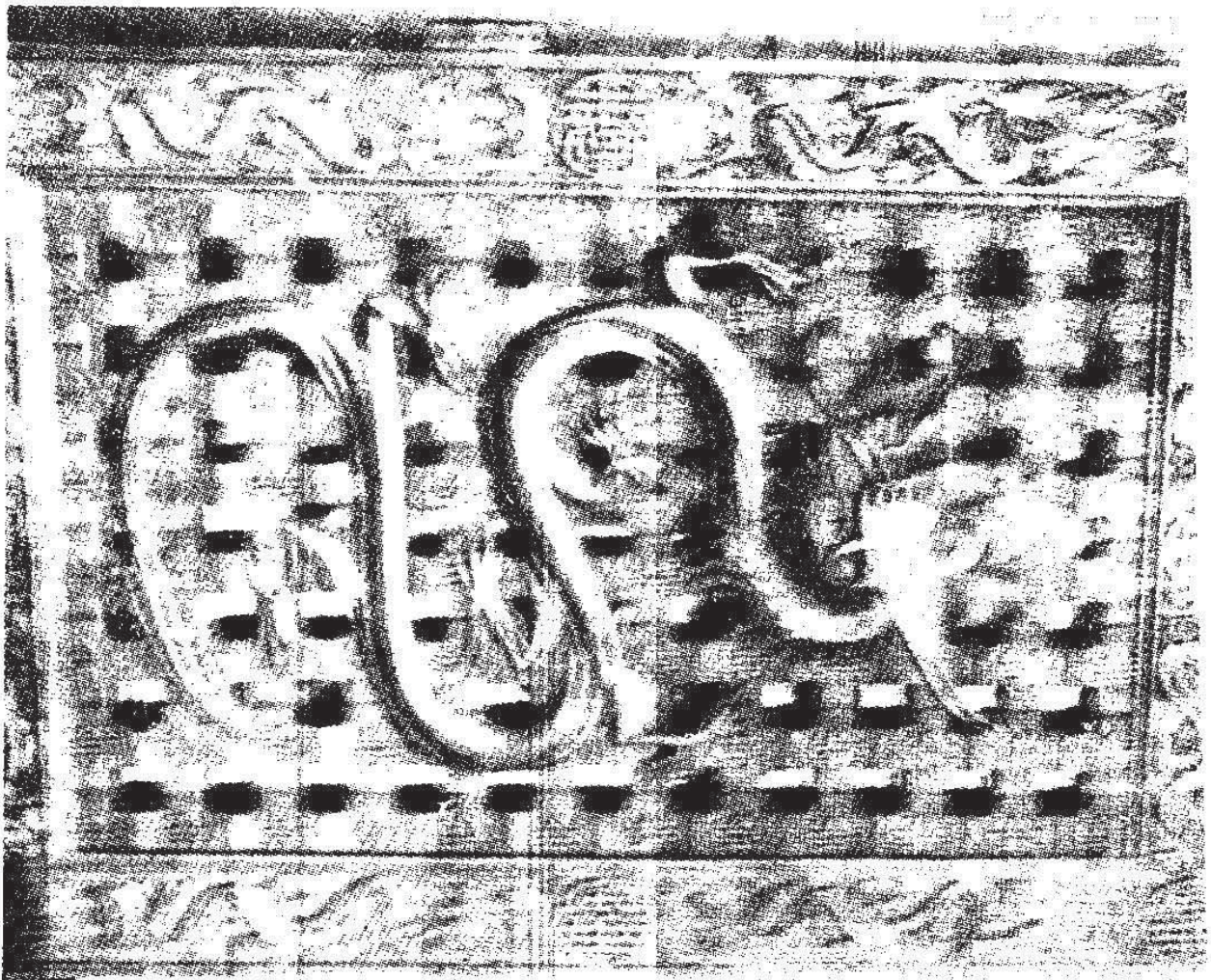
Nag-Devta (Wooden image).

1. Indra (Bhājā), c. 200 B.C.

2. Indra (Elūrā), c. 800 A.D.

3. *Vishnu on Ananta (Deogarh), c. 600 A.D.*

4. *Naga (Nālanda), c. 600 A.D.*
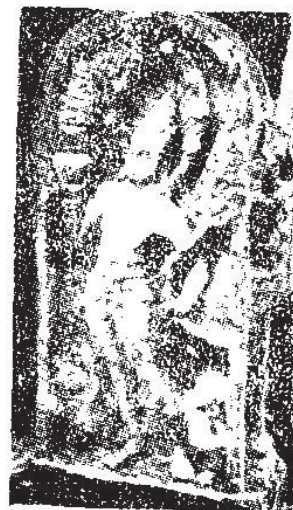
5. *Naga (Ceylon). V–VIII cent. A.D.*

7. *Buddha (Cambodia), XIV cent. A.D.*

6. *Krishna (Bengal), c. 825 A.D.*

8. *Nāgakals (Mysore), XVII–XVIII cent. A.D.*
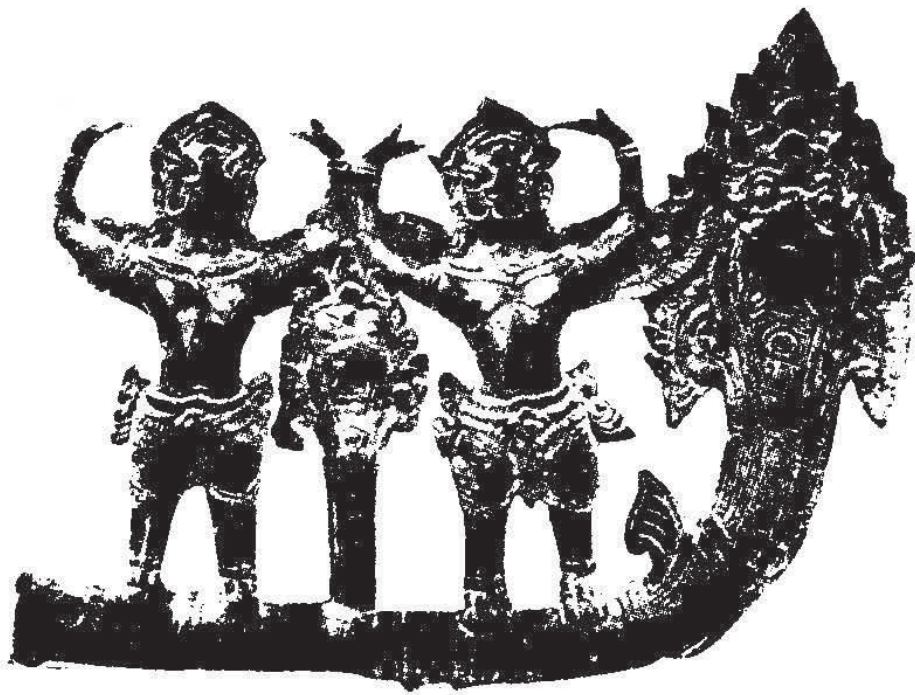
9 Garudas and Nāgas (Siam). XII–XIV cent. A.D.
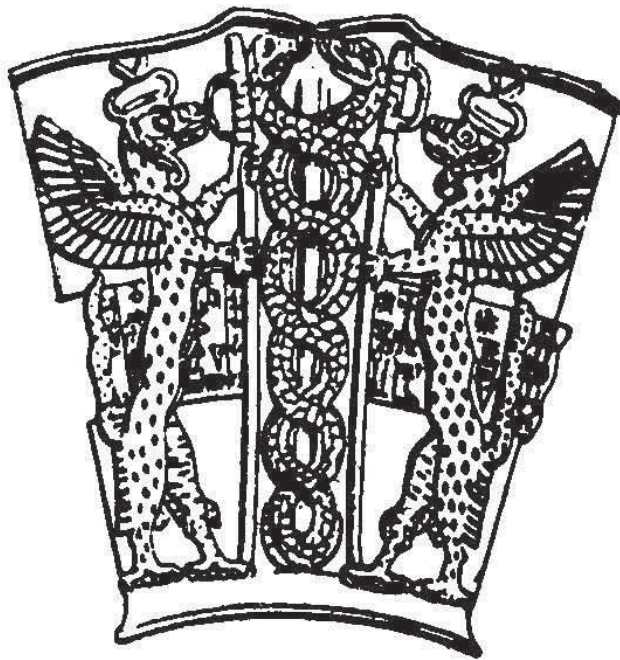
11. Sacrificial goblet (Sumer), c. 2600 B.C.

10. Assur (Assyria), c. VII cent. B.C.
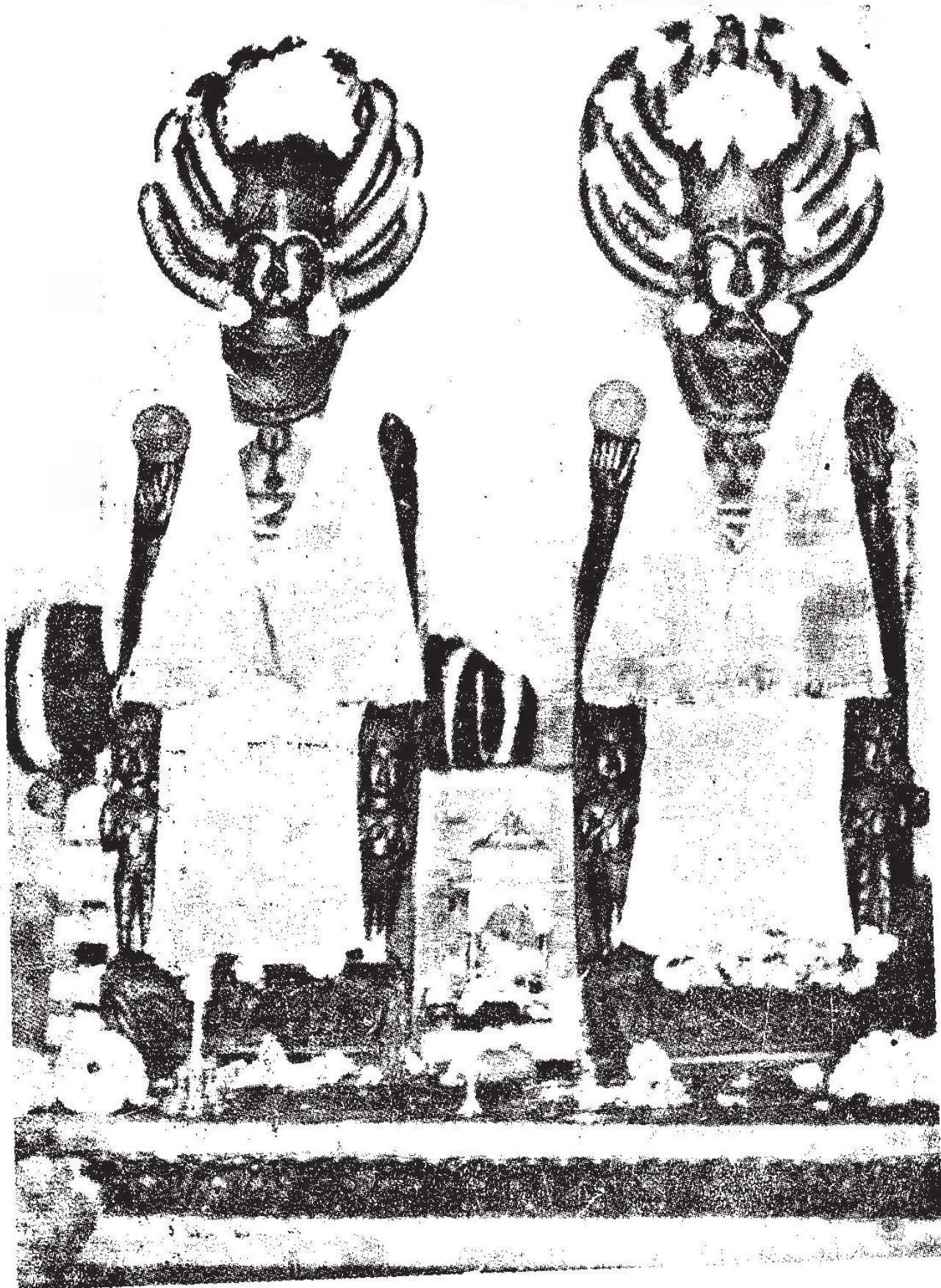
Vasuki Nag Temple Images, Bhadrawah.

प्रयोजन

आठ वर्ष पूर्व राष्ट्रीय संग्रहालय के सभागृह में विश्वविद्यालय कला-मर्मज्ञ डॉक्टर शिवारामा मूर्ति का भारतीय कला पर सारगर्भित भाषण सुन रहा था। भाषण के दौरान उन्होंने जे० पी० फोगल द्वारा लिखित प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक 'इंडियन सर्पेन्टलौर' की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। मेरे मन में ऐसी प्रशंसित पुस्तक पढ़ने की जिज्ञासा जागी। सौभाग्य से संग्रहालय के पुस्तकालय में मुझे पुस्तक मिल भी गई। मैंने एक सप्ताह में वह पुस्तक आद्योपांत पढ़ी और मेरा मन इस विदेशी विद्वान् की निष्ठा और परिश्रम के प्रति श्रद्धा से भर गया। इसी प्रेरणा के वशीभूत मैंने तत्काल यह भी निर्णय कर लिया कि मैं भी हिन्दी में भारतीय नागों पर एक ऐसी ही खोजपूर्ण पुस्तक लिखने का प्रयत्न करूँगा। इन आठ वर्षों में अनेक मन्दिरों, संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों में इस विषय की सामग्री सँजोता रहा, जिसका परिणाम प्रस्तुत पुस्तक है।

इस पुस्तक में अनेक स्थानों पर अलभ्य सामग्री भी संग्रहीत की गई है जो फोगल सरीखे विद्वानों को उस समय किसी कारण प्राप्त नहीं हो सकी होगी— विशेषकर हिमाचल प्रदेश के बारे में। हिमाचल प्रदेश में भारत के अन्य भागों की अपेक्षा आज भी नागपूजा की लोक-परम्परा जीवित है। भारत के इस पहाड़ी क्षेत्र में आज भी नाग देवताओं को अन्य ग्राम देवताओं की भाँति पूजा जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन में जहाँ मैंने नागपूजा के स्रोत लोक-परंपरा में खोजने का प्रयास किया है, वहाँ मैंने इसके वर्तमान स्वरूप की स्थिति जानने का प्रयत्न भी किया है। इस खोज में मेरे सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं। विज्ञान और तकनीकी युग में सामाजिक परिवर्तन इतनी शीघ्रता से हो रहे हैं कि उसके ओर-छोर को भी छू लेना कठिन ही नहीं, असंभव है। इस गहन अध्ययन के फलस्वरूप मैं कुछ बिन्दुओं तक पहुँचा हूँ। ये बिन्दु हैं—

(1) नागपूजा के प्रारम्भ का कोई एक स्रोत नहीं है। कहीं मनोवैज्ञानिक भय के रूप में, कहीं पौराणिक साहित्य के कारण, कहीं जातीय संस्कृति एवं तान्त्रिक प्रतीकों के रूप में, कहीं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण और कहीं व्यक्तिगत रुचि के कारण भारतीय लोक-परम्परा में नागपूजा का प्रारम्भ, विकास और ह्रास हुआ। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक नाग-पूजा धार्मिक जीवन की एक प्रबल धारा के रूप में देश के ग्रामीण समाज में विद्यमान रही, परन्तु अब ऐसा लगता है कि अन्य लोक-परम्पराओं की तरह यह भी ह्रास की ओर अग्रसर हो रही है। कश्मीर और दक्षिण भारत में, जो कभी नागपूजा परम्परा के गढ़ रहे हैं, अब बहुत कम

ऐसे क्षेत्र हैं, जहां अब भी यह परम्परा जीवित है। नागपूजा परम्परा से सम्बन्धित स्थान अब भी वहाँ मौजूद हैं। परन्तु हिमाचल प्रदेश ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ स्थानीय देवी-देवता के रूप में यह परम्परा आज भी जीवित है।

(2) जहाँ देश के अनेक भागों में भारतीय पौराणिक कथाओं में वर्णित नाग मन्दिर, भारतीय भवन-निर्माण कला की उत्कृष्ट शैली के परिचायक समझे जाने चाहिए, वहाँ जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल तथा अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में स्थानीय लोककला शैली के मन्दिरों में ही नागपूजा परम्परा प्रचलित है।

(3) भारतीय तान्त्रिक शास्त्रों में नागपूजा का भी अपना विशिष्ट स्थान है तथा योग में कुण्डलिनी शक्ति का प्रतीक समझा जाता रहा है।

(4) जैसे हर पत्थर शालिगराम नहीं होता, जैसे विष्णु के वाहन गरुड़, शिव के वाहन नंदी और शक्ति के वाहन सिंह के लिए सभी गरुड़ों, बैलों और सिंहों की पूजा करने की कोई परम्परा नहीं है, अपितु प्रतीक के स्वरूप उनके वाहनों की ही सतयुग से कलाकारों ने मूर्तियाँ बनाकर उनको लोकमानस द्वारा देवी-देवता के रूप में पूजा जाता रहा है, उसी प्रकार सारी सर्प-जाति की पूजा का नाग-पूजा से कोई सम्बन्ध नहीं है, पुराणों में वर्णित नागों की पूजा अब भी प्रतीक रूप में जीवित है और उस परम्परा को नाम, स्थान और व्यक्ति से सम्बन्धित कर कभी-कभी साधारण सर्पों से जोड़कर गड़बड़ कर दिया जाता है। अभी भी प्राय: बहुत सारी ऐसी नाग मूर्तियाँ मन्दिरों में पूजी जाती हैं, जिनके मुख मनुष्य के हैं, परन्तु हुड या गले पर एक, तीन, पाँच, सात या नौ नाग निर्मित हैं। इसमें नाग-पूजा की विशिष्ट परम्परा की पर्याप्त झलक मिलती है, इसलिए यह तथ्य स्पष्ट है कि नागों के प्रतीक को जोड़कर नाग-पूजा आज विद्यमान है।

(5) नागपूजा लोक-परम्परा की छानबीन करते हुए एक बात स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आयी है, कि भारत एक, उसकी आत्मा एक है। उत्तर हो या दक्षिण, पूर्व हो या पश्चिम, मैदान हों या पहाड़, लोक-परम्पराओं का आद्य रूप एक जैसा है---बाह्य भी, आन्तरिक भी। अनेक शरीरों में एक ही आत्मा का संचार है।

जहाँ तक मेरी जानकारी है, हिन्दी साहित्य में इस विषय पर मेरा प्रथम प्रयास है। आशा है हिन्दी जगत में इसका आशातीत स्वागत होगा। इस ग्रंथ की रचना में जिन विद्वानों की कृतियों से सहायता मिली, उनका उल्लेख सन्दर्भ ग्रंथ सूची के साथ-साथ यत्र-तत्र भी कर दिया है। फिर भी भूलवश यदि किसी सन्दर्भ ग्रन्थ की चर्चा रह गई हो, तो क्षमा-याचना चाहूंगा। इस पुस्तक की सामग्री संग्रहीत करने में मेरी जीवन-सहचरी कलावती जसटा ने जो सहायता प्रदान की, उसके लिए आभार प्रकट करना आवश्यक समझता हूँ।

अम्बिका निवास,
संजौली, शिमला-6

हरिराम जसटा

नाग-पूजा का स्वरूप

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूत विशेष संधान् ।
ब्रह्माणमीश कमलासन स्थ मृषीश्चु सर्वानुरंगाश्च दिव्यान् ।।

(गीता 11—15)

मानवजाति के धार्मिक इतिहास में अनादिकाल से विभिन्न जानवरों की पूजा की परम्परा के प्रमाण उपलब्ध हैं। ऐसा संभवतः इस कारण से भी हुआ कि मानव जीवन विकास में आध्यात्मिक विचारों की आद्य-अवस्था में मानव ने अपने आपको असहाय एवं निरुपाय अवस्था में पाया। मानव सभ्यता की आदि अवस्था में, ज्ञान और विज्ञान में इतनी प्रगति नहीं कर पाया था जितनी वर्तमान युग में। इसलिए मानव ने जानवरों में अपने से अधिक बल का कारण किसी अज्ञात दिव्य शक्ति को समझा। तभी उसने विभिन्न रूपों में प्रायः अपने से अधिक बलशाली और रहस्यमय जानवरों की पूजा परम्परा आरम्भ की। सभी जानवरों में विचित्र एवं रहस्यमय नागपूजा विश्व-भर में प्रचलित हुई। विश्व के अधिकांश भागों में साँप मिलते हैं। परन्तु उसके रहस्यमय जीवन और रूप के प्रति मानव में जिज्ञासा जागी और फिर नागपूजा का एक विशिष्ट रूप उभरा। फर्गुसन के अनुसार, 'नागपूजा यदि सबसे प्राचीन नहीं, तो उन प्राचीन पूजा पद्धतियों में से एक तो है ही, जिनके द्वारा आदि-मानव ने अज्ञात शक्ति की आराधना आरम्भ की। इसके अवशेष और पदचिह्न विश्व के सभी देशों में उपलब्ध हैं और स्पष्टतः मूर्ति-पूजा में नागपूजा का भी अपना विशेष स्थान है।'

नागपूजा का विभिन्न रूपों में विकास एवं विस्तार जितना भारत में हुआ, वह अन्यत्र दुर्लभ है। संस्कृति के उन्मेषकाल से ही भारतीय समाज में नाग पूज्य रहे हैं। नागपूजा का आदि रूप आर्यों से भी कहीं पहले विश्व की अनेक संस्कृतियों में प्रचलित था और धीरे-धीरे वैदिक संहिता काल में इसका समावेश आर्यों की पूजा-पद्धति में भी हो गया।

आदिकाल में ही भारत धार्मिक परम्पराओं का क्षेत्र रहा है। इस देश की जातीय परम्परा में प्राचीन काल से लेकर दिव्य अलौकिक विचारधारा, धार्मिक आस्थाएँ, कलात्मक मन्दिर, मूर्तियाँ, दिव्यद्रष्टा और धर्म-सम्प्रदाय जन्मे।

जितने उत्सव, त्योहार और पर्व मनाए जाते हैं, उनमें से अधिकांश का सम्बन्ध वैदिक काल की धार्मिक और पौराणिक परम्पराओं, विश्वासों, आस्थाओं और पद्धतियों से किसी न किसी रूप से जुड़ता है। इन्हीं असंख्य परम्पराओं में एक नागपूजा भी आज तक चली आ रही है। भारत में अब भी प्रतिवर्ष श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को देश के विभिन्न विभागों में विशेष रूप से नागपूजा की परम्परा प्रचलित है।

भारतीय साहित्य, लोकवार्ता, कला एवं संस्कृति और धार्मिक परम्पराओं में नागों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय वाङ्मय में देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ —ये तीनों सात्विक दिव्य जातियाँ मानी गई हैं। यक्ष, किन्नर और दैत्य—ये राजस दिव्य जातियाँ हैं। राक्षस, नाग, प्रेत—ये तामस दिव्य जातियाँ मानी गई हैं।

सारी प्रकृति को विरोधी और मैत्री शक्तियों में विभक्त किया जा सकता है। इन शक्तियों को मानवी, दैवी तथा जानवरों का रूप दिया गया है।

मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और सिन्धु सभ्यता (3000 ई० पूर्व) की खुदाई के फलस्वरूप जो मूर्तियाँ और मुहरें मिली हैं, उनमें नागपूजा के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं, इनमें से कई अवशेषों में नागों का रूप आधा मनुष्य का और आधा साँपों का मिलता है, जो अपने इष्टदेव के सामने प्रार्थी के रूप में दिखाए गए हैं। इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि मोहनजोदड़ो सभ्यता के समय नागों का रूप एक भक्त के रूप में उपलब्ध है, देवता के रूप में नहीं। परन्तु इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय लोक-मानस की धार्मिक परम्परा में नागपूजा भी शामिल थी।

फर्गुसन सरीखे अनेक विद्वानों के मतानुसार आर्यों में प्रारम्भ में नागपूजा का अभाव था। उनके अनुसार आर्यों ने इसे भारत में उनसे पहले बसने वाली काली चमड़ी वाले दस्यु के प्रभाव में आकर अपनाया। मोनियर विलियम का कथन है कि पौराणिक कथाओं में वर्णित नाग राजाओं के व्यक्तिगत नाम द्राविड़ न होकर आर्य थे। परन्तु द्राविड़ एवं आर्यों की बात उठाना निरर्थक है क्योंकि मानवजाति के नृतात्विक विकास से भी इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि आदि मानव ने सर्वप्रथम प्रकृति के प्रमुख तत्त्वों—सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु की उपासना करना, प्रकृति के अधिक समीप रहने के कारण, आरम्भ किया। शीत, ग्रीष्म, तूफान, बाढ़, आग, आँधी, ओला—वृष्टि जैसे प्राकृतिक प्रकोपों को वह भय, विस्मय, श्रद्धा और दयनीय दृष्टि से देखता था। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों मानव सभ्यता का विकास होता गया, उसने प्रकृति की इन शक्तियों को जिस रूप में देखा, समझा और माना, उन्हें अपनी विचारधारा में प्रतीकों के रूप में प्रतिष्ठित करना भी प्रारम्भ किया। तीव्र वलवती जलधाराओं की तरह लहराते, बल खाते

हुए नागों की पूजा जल आत्माओं के रूप में प्रारम्भ हुई। ज्यों-ज्यों इतिहास के चरण बढ़ते गए, अनुभूति की सीढ़ी पर मानव आगे बढ़ा। शिव-शक्ति, विष्णु, नाग, अन्य देवी-देवता और वीरों की पूजा का नाम देकर, भक्तों ने अपने-अपने इष्ट देवताओं के अनेक संकेतचिह्न बनाकर स्वयं को भी उनका वंशज मान लिया।

दक्षिण अमेरिका में मैक्सिको के हुईचोल इंडियन भी नाग को रक्षक समझते हैं। इस कबीले की कृषि और वर्षा की देवी टाटेईनुआरी हुआमे का रक्षक भी कुण्डलित नाग समझा जाता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्रायड ने साँप को सेक्स का प्रतीक माना है। उनके मतानुसार आदिम कबीलों में स्त्रियों द्वारा साँप की पूजा सेक्स के देवता के रूप में की जाती थी। कुछ भारतीयों का भी विचार है कि शिवलिंग और उससे पास लिपटे नाग सेक्स के प्रतीक हैं। इस धारणा के समर्थकों का तर्क यह है कि स्त्रियाँ ही नागपूजा अधिक करती हैं और नागपंचमी जैसे त्योहार भी स्त्रियों द्वारा ही मुख्य रूप से मनाये जाते हैं। नाग से पुत्रदान या शिव से श्रेष्ठ पति की कामना करने के पीछे सेक्स का मनोविज्ञान ही सक्रिय है। किन्तु यह धारणा एक-पक्षीय प्रतीत होती है और इसमें कुछ प्रमुख तथ्यों की अनदेखी कर दी गई है।

नारी द्वारा नागपूजा किए जाने की परम्परा के मूल में यौन-सेक्स की अपेक्षा सुरक्षा की भावना अधिक है। षष्ठी देवी नामक नागदेवी की पूजा, जिसे छठी पूजन कहा जाता है, बच्चे के जन्म के छठे दिन की जाती है। इस दिन माता देवी से स्त्रियां बच्चे की सुरक्षा एवं मंगल-कामना के लिए प्रार्थना करती है।

उत्तर भारत तथा अन्य प्रदेशों में रहने वालों की धारणा है कि उनके पूर्वज सर्प का रूप धारण कर कुटुम्ब-परिवार की रक्षा करते हैं, अतः प्रत्येक परिवार का अपना एक नागदेव होता है। नाग पंचमी के अवसर पर इनकी पूजा-स्तुति की जाती है। इस अवसर पर मकान के किसी एकान्त स्थान पर दूध का कटोरा भरकर कुलदेवता के पीने हेतु रख दिया जाता है, जिससे वह सन्तुष्ट होकर वर्ष-पर्यन्त उनकी रक्षा करें।

इसके साथ-साथ यह प्रथा भी प्रचलित है कि जब घर पर बहू के पुत्र का मुण्डन-संस्कार होता है तब घर के किसी एक कमरे की दीवार पर दरवाजे के बाहर पाँच सर्पाकृतियाँ बनायी जाती हैं, जिनकी विधिवत पूजा की जाती है। दूसरे पुत्र के उत्पन्न होने पर जब इस बच्चे का मुण्डन-संस्कार होता है, तब पहले की बनायी गई सर्पाकृतियाँ पोत दी जाती हैं और पुनः उसी स्थान पर दूसरी पाँच सर्पाकृतियाँ बनाकर उनकी उसी प्रकार विधिवत पूजा की जाती है।

उत्तर भारत के अवधी क्षेत्र में यह पूजा और भी अधिक भक्ति-भाव से की जाती है। इस अवसर पर सपेरे साँपों का दर्शन करवाते हैं। साँपों को दूध दिया

जाता है। घर में तरह-तरह के खाद्य-पदार्थ बनाए जाते हैं और परिवार की स्त्रियाँ व्रत रखती हैं। घर के भीतर पूजा-स्थल आदि स्थानों पर सर्पों की आकृतियाँ बनायी जाती हैं। उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के कुछ भागों में ऋषि पंचमी के दिन नागपूजा की जाती है।

नागपूजा की परम्परा का लक्ष्य एक ही है—उपासना से संकट-मुक्ति। यह पर्व साँपों में अभयदान पाने की याचना का पर्व है, जो अति प्राचीन काल से चला आ रहा है।

संसार में साँपों की लगभग 2500 किस्में हैं। लेकिन सभी किस्मों के सर्प विषधर नहीं होते। इन सभी किस्मों में कुल मिलाकर चार सौ किस्में ऐसी हैं, जिन्हें विषधर कहा जा सकता है। सर्पों के बारे में न जाने कितनी किम्वदन्तियाँ तथा भ्रांतियाँ लोगों में प्रचलित हैं। इनमें से अधिकांश निर्मूल हैं।

जिस साँप को देखते ही हम मार डालते हैं एवं जिसका नाम सुनते ही हमारे प्राण सूख जाते हैं, उसी सर्प की हम पूजा करते हैं। यह भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है कि उसी सर्प या नाग के लिए हमने मन्त्रों की रचना की है और उसकी हम स्तुति करते हैं।

अथर्ववेद में नागों के भयंकर कार्य के साथ-साथ उनके सुन्दर स्वरूपों की भी चर्चा बहुत विस्तारपूर्वक की गयी है। अथर्ववेद में पाँच ऐसे नागों का उल्लेख है जो उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और वायुमण्डल के रक्षक बताए जाते हैं और ये हैं —श्वित्र, स्वज, पृदाक, कल्माष-ग्रीव और तिरश्चिराजी। इसके अलावा इन नागों का भी उल्लेख है—चितकोबरा (पृश्चि), काला नाग (कैरात), घास के रंग का (उपतृण्य), पीला (बभ्रू), काला फनियर (असिता), रंगरहित (अलीक)। इसके साथ-साथ कुछ नागों का भी वर्णन है, जैसे—दासी, दुहिता, असति, तंगात, अमोदक और तवस्तु। ये नाग प्रायः गन्दे दलदली स्थानों में रहते हैं। इनसे दूर रहने की चेतावनी भी दी गयी है तथा इनके विष से कैसे मुक्त हुआ जा सकता है, इस पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

अनेक प्राचीन ग्रन्थों में विष-चिकित्सा का वर्णन मिलता है, जिसमें लता-जड़-छाल आदि औषधि के प्रयोग से साँप तथा नागों के विष को दूर करने के उपाय बताए गए हैं। कुछ ग्रन्थों में विष के प्रभाव से मुक्ति पाने के निमित्त मन्त्रों का उपयोग भी बताया गया है। वाग्भट ने अष्टांगहृदय में बताया है कि सर्प का विष ही सर्प-विष के नाश का सर्वोत्तम उपाय है, विशेषकर उसी जाति के सर्प का विष। डॉ० वैडल एवं अन्य विद्वानों ने वर्षों की शोधों के बाद यह जानकारी हासिल की है कि विषधर सर्प जब किसी को काटता है तब उसका विष रक्त के भीतर तो जाता ही है, किन्तु विष का कुछ भाग उस सर्प के पेट में भी चला जाता है। इससे उसके शरीर में विष को सहन करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

बताया जाता है कि सर्प से काटा हुआ व्यक्ति यदि पुनः उसी सर्प को अपने दाँतों से काट ले, तो सर्प की विष-सहिष्णुता शक्ति से उसके शरीर में चढ़ा विष शक्तिरहित हो जाता है। आज वैज्ञानिकों ने सर्प के विष का प्रभाव नष्ट करने के लिए सर्प के विष को ही माध्यम बनाया है, जिसमें 80 प्रतिशत फणधर सर्प के विष के साथ 20 प्रतिशत अन्य किसी सर्प का विष मिलाकर सीरम तैयार किया जाता है।

भारत में पाए जाने वाले अन्य साँपों में सबसे अधिक विषैले साँप हैं—कोबरा, जिसे काला नाग, शेषनाग, नागराज आदि नामों से पुकारा जाता है। यह भयंकर जहरीला साँप है। वाइपर की गिनती भी भारत के जहरीले साँपों में की जाती है। तीन लम्बे हीरे के आकार के बच्चों की कतारें शृंखलाओं के रूप में इसके भूरे शरीर पर सुन्दर लगती हैं।
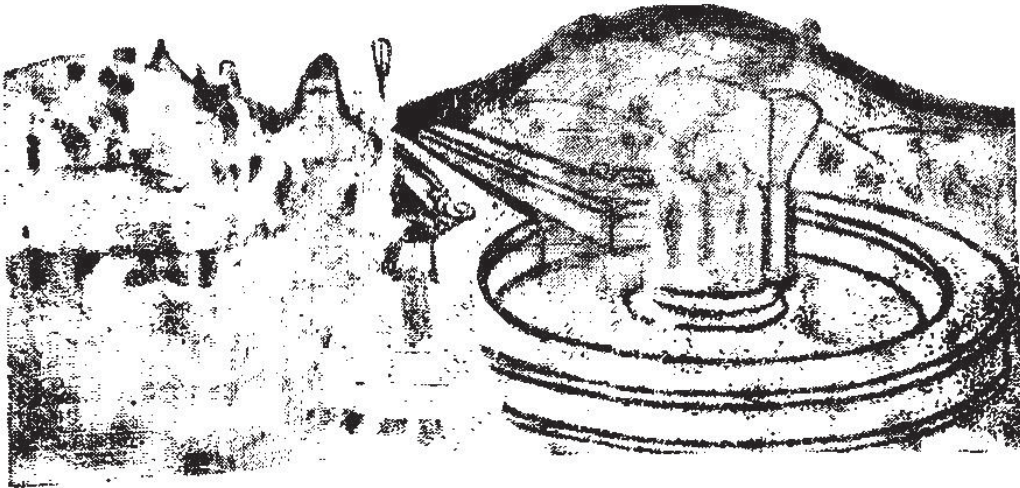
ज्योतिर्लिंग और नाग

नागों की उत्पत्ति

भारत में नागों की उत्पत्ति, उद्भव और विकास पर पुराणवेत्ताओं, इतिहासकारों, लोकवार्ताकारों एवं अन्य विद्वानों में मतभेद है। इस विषय पर जितना गहन, विस्तृत एवं वैज्ञानिक अध्ययन विदेशी विद्वानों ने किया है, उतना भारतीयों ने बहुत कम किया है। मानव संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में नाग-पूजा का भी अपना विशिष्ट स्थान है। हम यहाँ उसकी अच्छाई-बुराई, आवश्यकता या महत्त्व पर बल नहीं दे रहे, परन्तु मानव की धार्मिक आस्था में नागपूजा ने क्या स्थान ग्रहण किया और उसकी व्यापकता कितनी रही, यही अध्ययन कर रहे हैं।

विदेशी विद्वानों की दृष्टि में

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हर्म्न ओल्डन बर्ग के अनुसार नाग पैशाचिक, जो भेड़िया-आदमी, जलपरियों और हंसरूपी नारियों की भाँति आधे मनुष्य और आधे नाग-नागनियाँ होते हैं। वे स्वेच्छा से मनुष्य रूप धारण करने की भी क्षमता रखते हैं।

बौद्ध धर्मग्रन्थों के अनुसार नाग-प्रकृति की सत्यता का आभास नाम-रूप धारण करने वाले नाग के सोने या सम्भोग के समय सहज ही मिल जाता है। बौद्ध जातक कथा में ऐसे एक नाग युवक का उल्लेख आता है, जो बौद्धसंघ में शामिल होकर दीक्षा लेने का इच्छुक था, परन्तु सोते समय उसकी वास्तविकता का पता लग गया और उसे वहाँ से जाना पड़ा।

हैंडरिक कर्ण का विचार है कि नाग वास्तव में जल आत्माएँ अर्थात् प्रकृति का मूर्तिमान रूप है। नागपूजा का गहरा सम्बन्ध भारत के गर्म जलवायु और इस पर निर्भर जीव-जन्तुओं के अस्तित्व में निहित है। प्राचीन भारतीय साहित्य के अनेक प्रकरणों और पौराणिक कथा-प्रसंगों से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। नाग प्रायः नदी-स्रोतों, झीलों और जल-सरोवरों के आस-पास रहते हैं। इसी बात से यह विश्वास भी पनपा है कि नाग धरती पर वर्षा कर इसे हरा-भरा करने की सामर्थ्य रखते हैं। इसके साथ-साथ यदि नाग क्रोधित हो

जाएँ, तो आँधी, तूफान, ओला-वृष्टि कर, सारी फसलों को नष्ट भी कर सकते हैं।

अंग्रेज़ पुरातत्व-विशेषज्ञ प्रो० सी० एफ० ओल्डहम ने उपर्युक्त मतों से असहमति प्रकट करते हुए अपना मत अलग से प्रकट किया है। उनका कथन है, कि नाग आदिकाल में सर्प-रूप में नहीं थे। वे मनुष्य-रूप में ही थे। ये लोग अपने आपको सूर्य-पुत्र या सूर्य-वंशी मानते थे और इनका गण चिह्न नाग छत्र था। वैदिक साहित्य में धृतराष्ट्र को भी नाग कहा गया है। इसी प्रकार अन्य नाग राजाओं का उल्लेख भी मिलता है, जिनमें धनंजय, नल, अम्बरीष आदि न केवल आर्य नरेशों के नाम थे, वरन् यही नाम नाग राजाओं के भी थे। तत्कालीन भारत के उत्तरी भाग में तक्षिला इन नागराजाओं की राजधानी थी। तक्षक इसी राज्य की सेना का नायक था। उस समय के भारत सम्राट जनमेजय ने तक्ष-शिला क्षेत्र को पराजित करने के बाद एक प्रसिद्ध ब्राह्मण उतंक से परामर्श कर नाग-यज्ञ प्रारम्भ किया, जिसमें इस युद्ध में बन्दी बनाए गए नाग सरदारों को यज्ञ-आहुतियों में जीवित जलाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि नाग जाति की प्रारम्भ से ही आर्य जाति से घोर शत्रुता थी। यह शत्रुता दीर्घकाल तक बनी रही, लेकिन चिरकाल बाद एक युग-द्रष्टा ऋषि के शांति सन्धि करा देने के फलस्वरूप आर्य जाति एवं नाग जाति में घनिष्ठ मित्रता का विकास हो गया। तभी आगे चलकर इनमें अन्तर्जातीय विवाह भी होने लगे। तर्कसंगत और यथार्थता की कसौटी पर ठीक उतरते हुए भी, ओल्डहम के इस मत का किसी अन्य विशेषज्ञ ने समर्थन नहीं किया, जिनमें प्रसिद्ध विद्वान् फोगल का नाम भी उल्लेखनीय है।

कुछ अन्य विद्वानों ने, जिनमें फर्गुसन का नाम भी उल्लेखनीय है, भारत में नागपूजा का प्रारम्भ अनार्य जातियों से माना है। आर्यों के आने से पहले, यहाँ बसने वाली जातियों में नागपूजा प्रचलित थी। आर्यों का दूसरी जातियों से अनेक वर्षों तक संघर्ष चलता रहा, परन्तु साथ में एक-दूसरे की धार्मिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों और विश्वासों का आदान-प्रदान भी होता रहा। धीरे-धीरे आर्य जाति के लोगों ने काली चमड़ी वाले आदिवासी दस्यु से नागपूजा परम्परा को भी ग्रहण किया। आर्यों में इस प्रथा का वेदों में पहले कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि नागपूजा करने वाली जाति पर आर्यों ने बाद में विजय प्राप्त की थी। उन्हें आत्मसात करते हुए उनकी परम्पराएँ भी आर्य धार्मिक परम्परा का एक अभिन्न अंग बन गयी।

उपर्युक्त कथन का प्रतिपादन प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् मोनियर विलियम ने किया है। उनके अनुसार पौराणिक कथाओं में नागों के नाम व्यक्तिगत नाम हैं, जो निस्सन्देह द्राविड़ के नाम नहीं हो सकते। वे मूलतः आर्य नाम ही हैं। फोगल

भी मानते हैं कि ऋग्वेद उस समय की पूर्ण संस्कृति पर प्रकाश डालता है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में नागपूजा सम्बन्धी अनेक मन्त्र हैं, जिनका सम्बन्ध तन्त्र-सिद्धि से अधिक है।

फ्रांसीसी विद्वान् अगस्तबर्थ ने भारत में नागपूजा की उलझी हुई गुत्थी की ओर ध्यान आकर्षित किया है। उनके अनुसार उपर्युक्त सभी मतों में अपने आप में कोई पूर्ण सत्य का आभास नहीं दे पाया है। वे एकपक्षीय ही हैं। इसलिए अत्यन्त आवश्यक है कि इस उलझन को निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सुलझाने का प्रयत्न किया जाए—

(क) मानव के सबसे भयानक एवं रहस्यमय शत्रु प्राणियों में नाग की ही पूजा होती है।

(ख) जलतरंगों-से लहराते हुए रूप के प्रतीक नागों को मानकर, नदी-नालों और जल-स्रोतों के देवता के रूप में नागपूजा होती है, और

(ग) नागपूजा वैदिक 'अहिर्बुध्न्य' से मिलती-जुलती धारणाओं का विकास है, जिनका गहरा सम्बन्ध प्रकाश, प्रलय और अन्धकार की पौराणिक कथा से जुड़ती है।

प्राग विश्वविद्यालय में प्रो० मोरिटज़ विन्टरनिट्ज़ ने भी भारत में नाग-पूजा के अनेक पहलुओं पर बल दिया है। इनमें से प्रत्येक पहलू का विशेष महत्त्व है। यह विद्वान् भी फर्गुसन के इस मत से सहमत है, कि नागपूजा आर्यों ने दस्यु जाति से बाद में प्रभावित होकर ग्रहण की।

कई राजवंश नाग को अपना अधिष्ठाता देवता मानते रहे हैं। प्रत्येक वंशज का ऐसा विश्वास है, कि उनके कुल का एक प्रतिनिधि सर्प है, जिसे वास्तु नाग कहा जाता है। यदि कभी वास्तु सर्प को घर छोड़ते हुए देखा गया तो उस घटना को अपशकुन समझा जाता है। परिवार की निरन्तरता, ऐसा समझा जाता है, खतरे में पड़ जाती है। एबे दवाई ने 'हिन्दू मैनरर्ज, कस्टम्ज एण्ड सेरीमोनीज' में वर्णन किया है, कि यदि वास्तु सर्प किसी घर में घुस जाये, बजाए इसके उसे बाहर निकाल दिया जाए या मार दिया जाए, उसे खूब खिलाना और प्रतिदिन भेंटें चढ़ाना उचित है। हितैषी साँप को किसी मृत पूर्वज की आत्मा समझा जाता है, जिसने उस परिवार में शरण ली है।

नागों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भागवतपुराण में विस्तृत लेख मिलता है। कहते हैं कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थीं—बनिता और कद्रू। कहते हैं, एक बार कश्यप ने प्रसन्न होकर दोनों से एक-एक वर माँगने को कहा। कद्रू ने एक हजार वीर नागों की माता होने का वर माँगा और बनिता ने एक वर से दो पुत्र मांगे जो बाद में अरुण और गरुड़ के नाम से प्रसिद्ध हुए।

नागों की माँ कद्रू को धरित्री का प्रतीक माना जाता है। गरुड़ और अरुण की माँ बनिता को स्वर्ग की देवी माना जाता है।

एक दिन कश्यप की दोनों पत्नियों में इस बात पर विवाद उठ खड़ा हुआ, कि सूर्य के अश्व श्यामवर्ण के हैं या श्वेत। वनिता ने उनका रंग श्वेत बताया; पर कद्रू नहीं मानी। वह कहने लगी कि वे श्याम वर्ण के हैं। बनिता ने आखिर शर्त लगा दी कि यदि अश्वों का रंग श्वेत हुआ तो तुम और तुम्हारे पुत्र हमारे दास बनकर रहेंगे और यदि श्याम हुआ तो वह अपने पुत्रों सहित कद्रू की दासता में रहेगी। कद्रू ने स्वीकार कर लिया। सायंकाल जब कद्रू ने इस घटना की अपने पुत्रों से चर्चा की तो उसे ज्ञात हुआ कि सूर्य के अश्व श्वेत वर्ण के हैं। कद्रू छटपटाने लगी। तब शेषनाग को छोड़कर उसके बाकी पुत्रों ने उसे आश्वस्त किया—"माँ! चिन्ता मत करो। हम लोग जाकर अश्वों से लिपट जायेंगे जिससे वे दूर से श्यामवर्ण के दिखाई देंगे।" यह बात सुनकर कद्रू प्रसन्न हुई। परन्तु बाद में बनिता पर यह भेद खुल गया। तब से लेकर गरुड़ और नागों की शत्रुता चली आ रही है।

इसी तरह के अनेक प्रसंग भारतीय साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं, जिनसे नागों की उत्पत्ति पर प्रकाश पड़ता है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि नाग योनि मृत राजा; महात्मा या पूर्वजों की आत्मा को प्राप्त होती है, जिन्हें शापग्रस्त, बुरे कर्म या अन्य कारणों से इस योनि में जीवन-यापन करना पड़ता है। नागों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कल्हण की 'राजतरंगिनी' में एक घटना का उल्लेख मिलता है। एक बार कश्मीर के अभिमानी राजा दामोदर के पास कुछ ब्राह्मण भिक्षा-याचना करने आए। उसने उन्हें कुछ न देकर तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से कहा—सर्पति, सर्पति (अर्थात् यहाँ से दूर जाओ)। इस पर ब्राह्मणों ने राजा को शाप दिया—ओ अभिमानी राजा दामोदर, तू ब्राह्मणों से सर्पति-सर्पति कहता है, इसलिए तू सर्प हो जा। किंवदंती है कि वह राजा आज भी सर्प के रूप में जल की तलाश में कश्मीर की घाटियों में घूमा करता है और कभी-कभी प्रायश्चित-रूप में निकली उसकी निःश्वास से सारे वातावरण में गरम-गरम वायु लहरा उठती है।

संस्कृत के प्रसिद्ध अमरकोश के प्रथम खण्ड में आठवें सर्ग के चौथे श्लोक के अनुसार भी नाग फण और पूँछ सहित मनुष्याकार, देवयोनि विशेष के सम्बन्ध में वर्णित है। पर बामन शिवराम आप्टे द्वारा रचित संस्कृत कोश में नाग साँप, विशेषतः कृष्ण सर्प एक काल्पनिक नागदैत्य के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, जिसका मुख मनुष्य जैसा और पूंछ साँप जैसी होती है और वह पाताल में रहता है।

नाग शब्द का प्रयोग भारतीय साहित्य में अनेक अर्थों में हुआ है। प्रथम इसका प्रयोग साधारण और देवत्व प्राप्त साँपों के लिए किया गया है। श्रीमद्-भागवत गीता के दसवें अध्याय के 28वें एवं 29वें श्लोक में सर्प और नाग का अलग-अलग उल्लेख मिलता है।

"सर्पों में वासुकि जो सब सर्पों का राजा है और जो सबसे अधिक विषैला है, वह मैं हूँ। (28)

नागों में जो उनका राजा और भगवान विष्णु की शैयारूप अनन्त अर्थात् शेषनाग है, वह मैं हूँ। (29)"

नागजाति का सर्प जाति से इतना भेद कुछ टीकाकारों ने माना है, कि नाग के अनेक फण होते हैं और सर्प का एक। नाग में प्राय: विष नहीं होता, किसी-किसी में होता है और सर्प में प्राय: विष होता है। नागों के प्राय: नौ और कहीं-कहीं दस प्रकार माने जाते हैं—वासुकि, शंखपाल, पुलिक, कर्कोटक, पद्मक, अनन्त, शेष और काल।

इस भेद के विषय में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने लिखा है—"वासुकि *सर्पों का राजा और अनन्त, शेष ये अर्थ निश्चित है।* अमरकोश और महाभारत में भी यही अर्थ दिए गए हैं। परन्तु निश्चयपूवर्क नहीं बतलाया जा सकता कि नाग और सर्प में भेद क्या है। महाभारत के आस्तिक-उपाख्यान में इन शब्दों का प्रयोग समानार्थक ही है तथापि जान पड़ता है कि यहाँ पर सर्प और नाग शब्दों से सर्प के साधारण वर्ग की दो भिन्न-भिन्न जातियाँ अपेक्षित हैं। श्रीधरी टीका में सर्प को विषैला और नाग को विषहीन कहा गया है। रामानुजाचार्या ने, जिन्हें कई लोग शेषनाग का अवतार भी मानते हैं, अपने भाष्य में सर्प को एक सिर वाला और नाग को अनेक सिरोंवाला कहा है। परन्तु ये दोनों भेद कहाँ तक ठीक हैं, यह कहना अत्यन्त कठिन है ; क्योंकि कुछ स्थलों में नागों के प्रमुख कुल बतलाते हुए उनमें अनन्त और वासुकि को पहले गिनाया गया है और वर्णन किया है कि दोनों ही अनेक सिरोंवाले एवं विषधर हैं, किन्तु अनन्त है अग्निवर्ण और वासुकि है पीला।

फिर नाग शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए हुआ है, जो अपनी वंशावली नाग माता-पिता से जोड़ते हैं।

तृतीय उन लोगों के लिए भी नाग शब्द का प्रयोग हुआ है, जो नाग परम्परा और पूजा से सम्बन्धित हैं।

भारत के राजनैतिक इतिहास में नाग जाति ने वैसी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जैसी नागपूजा परम्परा ने धार्मिक इतिहास में। किसी समय नाग जाति का प्रभुत्व एवं प्रभावक्षेत्र भारत के बहुत बड़े भाग में था, परन्तु धीरे-धीरे यह प्रभाव क्षीण होता गया।

प्राचीन पौराणिक एवं बौद्धकालीन साहित्य में नागकन्याओं के असीम सौन्दर्य एवं प्रणय कथाओं का उल्लेख मिलता है। इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्य एवं नाग जाति के सम्बन्धों को दृढ़ करने में इन विवाह सम्बन्धों का विशेष प्रभाव रहा है। महाभारत के प्रसिद्ध नायक वीर अर्जुन और अपने समय की अनुपम

सुन्दरी नागकन्या उलुपि का विवाह, साधु जड़तकरू और नागकन्या जड़तकरन का विवाह, जो वासुकि नाग की बहन थी, जैसे उदाहरण उपलब्ध हैं। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश की लोक-परम्परा में 'देवकन्या गीत गाथा' में श्रीकृष्ण की माता देवकी को वासुकि नाग की कन्या बताया गया है। वरहदस्या और शिशुनाग का भी प्रसिद्ध नाग राजा के रूप में उल्लेख मिलता है। कल्हण ने 'राजतरंगिनी' में ऐसे अनेक उदाहरणों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार ब्राह्मण विशाख और सुसरवासनाग की कन्या चन्द्रलेखा का प्रणयबन्धन में बंध जाना और भूरिदत जातक कथा अनुसार वाराणसी के राजकुमार का एक अनुपम सुन्दरी नागकन्या के साथ विवाह का उल्लेख मिलता है। इस विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न कन्या का विवाह बाद में नागराज धृतराष्ट्र से होने का भी उल्लेख मिलता है। भारत में नागवंशी राजाओं के नाम और काल इस प्रकार समझे जाते हैं—शेषनाग (राज्यकाल 110 से 90 ई० पू), भोगिन (90 ई० पू० से 80 ई० पू०), रामचन्द्र (80 ई० पूर्व से 50 ई० पू०) इत्यादि। पल्लववंश का संस्थापक इन्हें समझा जाता है। नागकन्या से विवाह किया और इस विवाह से उनके पुत्र स्कन्दशिष्य का जन्म हुआ। लोक-परम्परानुसार कम्बोज के शासक वंश का प्रारंभ भी नागकन्या सोमा और ब्राह्मण कौडिण्य के विवाह सम्बन्ध के फलस्वरूप हुआ। प्राचीन साहित्य में लंका भी बहुत समय तक नागजाति का गढ़ रहा है और बहुत समय तक नागद्वीप के नाम से प्रसिद्ध रहा।

नाग शब्द प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषों एवं नगरों के नाम से भी जुड़ा हुआ है। इसके प्रमाण प्रारंभिक शताब्दियों के उत्तर मौर्यकालीन अभिलेखों में जगह-जगह मिल जाते हैं। भारतीय इतिहास के अनुसार भारत में अनेक नागवंशी राजा विभिन्न प्राचीन राज्यों में राज करते रहे हैं। इन प्रसिद्ध राज्यों में विदिशा, मणिपुर, बस्तर, कांतिपुर, मथुरा, छोटा नागपुर के राजा पुंडरिक, पद्मावती और राजा उदयन के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ नागवंशी राजाओं के नाम हैं—जयनाग, महानाग, नाग बहुटिकिया, नागपाल, नागदत्त, नागदिना, नागवती, नागापिया, नागरखिता, नागसेन, शेषनाग, भोगिन नाग, रामचन्द्र नाग इत्यादि। इसी प्रकार भारत में अनेक नगरों का नामकरण नाग के नाम से हुआ है, जिनमें नागपुर, उग्रपुर, उग्रखंड, नागिनी, भाकसूनाग, बैरीनाग, शेषनाग, नागबणी, नागौर, नगरोटा, अनन्तनाग इत्यादि।

उपर्युक्त विवरण से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि नागपूजा परम्परा भारतीय सांस्कृतिक जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है।

नाग : भूमिपुत्र या पातालवासी ?

भारत में ही नहीं, विदेशों में भी यह विश्वास पाया जाता है कि नाग भूमिपुत्र है। मिस्र के लोगों की यह धारणा है कि यदि नाग भूल से किसी को डस ले तो पृथ्वी फिर उसे अपनी गोद में जगह नहीं देती और उसे यहाँ-वहाँ भटकना पड़ता है।

नाग भूगर्भ में क्यों रहते हैं? इस पर एक पौराणिक आख्यान में प्रकाश डाला गया है। सृष्टि के समय ब्रह्मा के वरदान से एक आस्तिक दम्पति के घर आठ नाग पुत्र-रूप में प्राप्त हुए। ये सभी बचपन में अत्यन्त चपल, मदोन्मत्त और भयंकर विषधारी थे। जब ये बड़े हुए, तो इनकी मनमानी हरकतों से जीवों का संहार होने लगा। इनके उपद्रवों से तंग आकर अन्ततः प्रजा ने ब्रह्मा की शरण ली। ब्रह्मा ने प्रजा को निर्भय रहने का आश्वासन देते हुए इन भयंकर मदोन्मत्त नागों को अपने सामने बुलाया और शाप दिया—"जिस प्रकार तुम लोगों ने मेरी सृष्टि का संहार किया है, उसी प्रकार तुम्हारा भी क्षय हो।" शापवाणी सुनकर नागों का सारा नशा उतर गया। बाद में उन्होंने ब्रह्माजी के पाँव पकड़कर उनसे क्षमा-याचना की। परिणामस्वरूप ब्रह्माजी ने उन्हें सुतल, बितल और पाताल में रहने की व्यवस्था कर दी।

हिन्दू परम्परा के अनुसार यह पृथ्वी शेषनाग के फणों पर स्थित है। वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट उल्लेख है कि जब सीता भूमिसात होने को थीं, तब पृथ्वी उन्हें गोद में लेने के लिए प्रकट हुई। माता पृथ्वी एक ऐसे रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठी हुई थी, जिसे भूमिपुत्र नाग अपने फणों पर उठाए हुए थे।

साधारण भारतीय ग्रामीण साँप को दबे हुए कोष का संरक्षक भी मान लेता है। उनके अनुसार जब कोई धनी व्यक्ति बिना पुत्र-पुत्री के मर जाता है तब वह भयानक साँप का रूप धारण कर अपने कोष की रक्षा करता है।

विष्णुपुराण में एक कथा है कि नारद मुनि एक बार विमान द्वारा पाताल लोक, जिसे नागलोक भी कहा जाता है, की यात्रा पर गए। नागलोक का वर्णन नारदजी द्वारा उक्त पुराण में इस प्रकार किया गया है—

पाताल तो स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर है, जहाँ नागफण के आभूषणों में

सुन्दर प्रभायुक्त आह्लादकारिणी शुभ्र मणियाँ जड़ी हुई हैं, उस नागलोक को किसके समान कहें। जहाँ-तहाँ दैत्य, दानवों और नाग कन्याओं से सुशोभित पाताललोक में किस मुक्त पुरुष की भी प्रीति न होगी ! वहाँ दिन में सूर्य की किरणें केवल प्रकाश ही करती हैं, उसकी ज्योति में तीव्र उष्णता नहीं होती तथा रात में चन्द्रमा की किरणों से शीत नहीं होता, केवल चाँदनी फैलती है। वहाँ भक्ष्य-भोज्य और महापानादि के भोगों से आनन्दित भोगियों, सर्प जातिवालों, भोग करने वालों और दानवादिकों को समय जाता हुआ भी प्रतीत नहीं होता। वहाँ सुन्दर वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर और कमलों के वन हैं। वहाँ नर-कोकिलों की सुमधुर कूक गूँजती है और आकाश मनोहारी है। वहाँ पाताल-निवासी दैत्य-दानव एवं नागगण द्वारा अतिस्वच्छ आभूषण, सुगन्धिमय अनुलेपन, वीणा, वेणु और मृदंगादि के स्वर तथा सूर्य ये सब एवं भाग्यशालियों के भोगने योग्य और भी अनेक भोग भोगे जाते हैं। इसलिए नागलोक को भोगवती भी कहा गया है। ऐसा ही वर्णन पुराण में पाराशर मुनि ने भी किया है।

प्रसिद्ध कलाकार निकोलाई रोरिक ने हिमालय की यात्रा के विवरण में कई स्थानों पर अविश्वसनीय लगने वाली बातों का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि कंचनजंघा के तल में अपार धनराशि और मूल्यवान रत्न आदि छिपे पड़े हैं। इन कोषागारों पर बड़े मजबूत दरवाजे लगे हैं, जिनसे पृथ्वीवासी उनके दर्शन तक नहीं कर सकते। रोरिक ने इन दरवाजों को देखा था। आकाश गमन करने वाले लामाओं ने उन्हें बताया था कि ये दरवाजे समय आने पर अपने आप खुल जायेंगे। पर वह समय कब आयेगा, यह वे नहीं जानते। तिब्बत की सीमा पर स्थित विशाल कंचनजंघा पर्वतमाला के समीप जाकर उन्हें पता चला कि स्थानीय लोगों के अनुसार उसके तल में न जाने कब से गुप्त खजाने दबे पड़े हैं। इसी कारण वे उसे महान हिम के पाँच कोषागर भी कहते हैं। नागाओं ने उन्हें हिमालय के तल में स्थित राजमहलों, गुप्त मार्गों और ऐसे कोषागारों के बारे में बताया जिनकी रक्षा सिर पर जगमगाते दीप उठाए, उड़ते हुए नाग करते हैं। उनके इस कथन में कितना सत्य है, यह खोज का विषय है। हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार भी भूमिगत कोष के नाग रक्षक होते हैं। वे ऐसे कोष के समीप किसी को फटकने नहीं देते। परन्तु जब किसी भाग्यशाली को वह कोष देना चाहते हैं, तो उन्हें स्वप्न में कोष का स्थान और प्राप्त करने की विधि भी बता देते हैं। भाग्यशाली व्यक्ति जब कोष प्राप्त कर लेता है तो वह नाग अदृश्य हो जाता है।

भारतीय साहित्य में नाग

वैदिक काल

ऋग्वेद संहिता में नागों का उल्लेख कभी राक्षसी रूप में और कभी दिव्य रूप में मिलता है। वेदों में नागों के दो रूपों की कल्पना की गई है—मंगलमय रूप का नाम 'अहिर्बुध्य' तथा हानि पहुँचाने वाले रूप का नाम वृत्र कहा गया है। अहिर्बुध्य साँपों को ही नाग देवता समझकर पूजा जाता है। इसके साथ एक कथा भी जुड़ी है। कहते हैं अहिवृता राजा इन्द्र का एक शक्तिशाली शत्रु था। राजा इन्द्र ने युद्ध में इस राक्षस को मार दिया और तब से राजा इन्द्र को वृताहन भी कहा जाने लगा। ऋग्वेद में नागों का अहिर्बुध्य रूप ही दिव्य माना गया है। अत: यह कहा जा सकता है, कि जहाँ अहिवृता के पीछे आर्यों की आध्यात्मिक भावना निहित है, वहाँ अहिर्बुध्य के पीछे ऐसे लगता है आर्यों से पूर्व स्थानीय लोगों की विचारधारा विद्यमान है, जिसे आर्यों ने ऋग्वेद काल से अपनाना आरंभ कर दिया था।

यजुर्वेद, अथर्ववेद, गृहसूत्र, रामायण, महाभारत और पुराणों में नागों के लिए अनेक सम्मानार्थ उद्धरण मिलते हैं।

अथर्ववेद (vi .56. 1 ff) में कहा गया है—हे देवताओ ! साँप हमें और हमारी सन्तति को न काटें। जो बन्धनयुक्त जबड़े हैं वे न खुलें, जो खुले हैं वे बन्द न हों। देवताओं का सम्मान करता हूँ।···असिता के प्रति आदर प्रकट करता हूँ। तिराश्चिराज का आदर करता हूँ। स्वजा और अबू का आदर करता हूँ। ···ओ सर्प, मैं तुम्हारे दाँत, दोनों जबड़े, जिह्वा और मुख-सहित आहत करता हूँ।

इस तरह का उल्लेख नागों के बारे में 'मैत्रेयी संहिता' में भी मिलता है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है—उन साँपों के प्रति आदर प्रकट करता हूँ, जो भूमि, आकाश और स्वर्ग में विचरते हैं। उन साँपों के प्रति भी आदर प्रकट करता हूँ, जो वृक्षात्मा बनकर सुराखों में हैं, या जादूगरों के तीर में हैं। उन साँपों के प्रति भी आदर प्रकट करता हूँ, जो स्वर्ग के प्रकाश में हैं, सूर्य की किरणों

में हैं, जो जल में विचरते हैं।

अथर्ववेद के उपर्युक्त उद्धरणों से दो विभिन्न मत प्रकट होते हैं। कुछ साँपों को देवजन कहा गया है, जिससे सन्देह नहीं रहता कि वे दिव्य ही होंगे। दूसरी ओर उन्हें समाप्त करने की इच्छा भी प्रकट की गई है। पूजा एवं विध्वंस जैसी परस्पर-विरोधी भावनाएँ एक ही स्थान, एक ही प्राणी के लिए अभिव्यक्त की गई हैं। इससे हमें नागपूजा के आदिकाल से ही परस्पर-विरोधी विचारधारा के संकेत मिलते हैं। निसन्देह नागपूजा का प्रारंभ रहस्यमय एवं प्रवृत्ति की हिंसक शक्ति के प्रति भय से माना जाना चाहिए।

अथर्ववेद (अध्याय 3, 27) के अनुसार नागों को चारों दिशाओं के दिग्पाल के रूप में मानकर उनका सम्बन्ध वैदिक देवताओं से जोड़ा जाता है। बौद्ध ग्रन्थ 'ललितविस्तार' में कुछ प्रसिद्ध नाग राजाओं को लोकपाल के रूप में मान्यता दी गई है। आज भी भारतीय ग्रामीण समाज में ग्राम देवता, ग्राम काली के समान ही ग्राम के अधिदेव भी माने जाते हैं।

गृहसूत्र में नागपूजा की विभिन्न विधियाँ बताई गई हैं। इनके दो उद्देश्य हैं। प्रथम यह कि उनका आदर हो। दूसरे यह कि उनके दुष्प्रभाव का निवारण हो। इसी ग्रंथ के अश्वालवना गृहसूत्र (2, 19) में कहा गया है, कि याजक पूर्व की दिशा में जाए, पवित्र स्थान पर धरती पर जल छिड़के और मंत्र सहित यज्ञ करे। नागों के दिव्य समूह को स्वाद, वे नाग जो पृथ्वी, वायु, स्वर्ग और दिशाओं में रहते हैं, उनके लिए मैं बलि लाया हूँ। उन्हीं को मैं यह बलि देता हूँ।

ऐसे ही अनेक प्रसंग नागों के सम्बन्ध में इस गृहसूत्र में उपलब्ध हैं, जिससे यह सिद्ध हो जाता है, कि नागपूजा आर्यों के गृहसूत्र काल में लोकप्रिय हुई।

महाकाव्य एवं पौराणिक काल

पुराणों एवं महाकाव्य रामायण एवं महाभारत में भी नागों की उत्पत्ति, उनके शरीर की बनावट, जादुई शक्ति, भयानक प्रकृति और दिव्यता पर काफी प्रकाश डाला गया है। सामान्यतः वे तामसिक वृत्ति के और विषैले माने गए हैं। फिर भी इन्हें धन का रक्षक, स्वास्थ्य-प्रदायक, लम्बी आयु एवं सन्तति देने वाला भी कहा गया है। अपनी दिव्य उत्पत्ति एवं जादुई शक्ति के फलस्वरूप नाग कोई भी रूप किसी भी समय धारण करने की क्षमता रखते हैं। उनका सामान्य निवास-स्थान जल में या धरती के नीचे पाताललोक माना जाता है।

हिन्दुओं में नागपूजा सम्बन्धी परस्पर-विरोधी घटनाओं का उल्लेख भी मिलता है। पांडवों को भी हिन्दू परम्परा में देवता के रूप में पूज्य माना गया है। हिन्दू पुराणों में एक स्थान पर नागों और पांडवों में वैरभाव का आधार भी मिलता है। कई जगह पांडवों को भी नाग का वंशज कहा गया

है। कहते हैं एक बार कृष्ण और अर्जुन ने अग्निदेव को खाण्डव वन जला देने में सहायता की, जहाँ तक्षक नाग और उसके बेटे अश्वसेन नाग का निवास था। यही कारण बाद में इन नागों के पांडवों के साथ वैरभाव का आधार बना। फलस्वरूप पांडवों के पौत्र परीक्षित से तक्षक ने बदला लिया। इस घटना का विस्तृत वर्णन श्रीमद्भागवत में उपलब्ध है। कहते हैं एक बार राजा परीक्षित आखेट को गए। जंगल में शमीक ऋषि तपस्या में लीन थे। उन्होंने अपने शिकार के बारे में उनसे कुछ पूछा, पर तप में लीन ऋषि शांत बैठे रहे। राजा परीक्षित पास ही मरे पड़े सर्प को ऋषि के गले में डालकर, वापस लौट आए। कुछ देर बाद जब तपस्या करते हुए ऋषि के सुपुत्र शृंगी ऋषि वहाँ पहुँचे, तो उन्हें अपने पिता के गले में मरा हुआ साँप देखकर क्रोध आया और गुस्से में उन्होंने शाप दे दिया : "जिसने भी मेरे पिता के गले में सर्प डाला है उसे नागों का राजा तक्षक सातवें दिन काटेगा और उसकी सर्पदंश से मृत्यु हो जाएगी।" जब शमीक ऋषि की समाधि टूटी और शाप की बात ज्ञात हुई, तो उन्हें दुख हुआ। शाप का समाचार भी तुरन्त ही राजा परीक्षित तक पहुँच गया। तब उन्होंने काँच का महल बनाया, ताकि साँप उसमें प्रविष्ट न हो सके। अभूतपूर्व तैयारियाँ हो गईं। कहते हैं शाप की बात सुनकर उस समय के प्रसिद्ध वैद्य धन्वंतरि यह निर्णय करके कि वह धर्मात्मा राजा की सर्पदंश से मृत्यु नहीं होने देंगे, चल दिए। वह दिन शाप की अवधि का अन्तिम दिन था। मार्ग में तक्षक से उनकी भेंट हो गई। दोनों में जब बातचीत हुई और भेद प्रकट हुआ तो तक्षक ने कहा—लीजिए, मैं इस सामने खड़े वृक्ष को अपने दंश से भस्म कर देता हूँ, यदि आपमें सामर्थ्य है, तो उसे पुनर्जीवित कर दीजिए।

नागराज तक्षक ने दंश से वृक्ष को भस्म कर दिया, किन्तु उस समय उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब आचार्य धन्वंतरि ने उसे अपनी औषधि से पुनर्जीवित कर दिया। तक्षक नाग को कहना पड़ा—आप तो वास्तव में भगवान हैं। परन्तु ऐसा करने से एक ऋषि का दिया हुआ शाप पूरा न होगा। आचार्य धन्वंतरि ने गहराई से इस बात पर सोच-विचार किया। वह वहीं से लौट गए। उधर तक्षक ने सूक्ष्म रूप धारण किया और एक फल में प्रवेश कर वह शीशे के महल में पहुँच गया, जहाँ उसने अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया और राजा परीक्षित को काटकर शृंगी ऋषि का शाप और अपनी पुरानी शत्रुता को पूरा किया।

इसके बाद राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय जब वयस्क हुए और उन्हें अपने पिता की मृत्यु का कारण ज्ञात हुआ, तो उन्होंने संसार के समस्त नागों को भस्म कर देने के लिए नागयज्ञ का आयोजन किया। सभी नाग बारी-बारी से हवनकुण्ड में गिरकर भस्म होने लगे। जब तक्षक के अतिरिक्त और कोई नाग

शेष न रहा, तो वह राजा इन्द्र के सिंहासन से लिपट गया। मंत्र-शक्ति के प्रभाव से जब सिंहासन भी डोलने लगा तो राजा इन्द्र को मालूम हुआ कि तक्षक ने उनकी शरण ली है। अन्त में नारद मुनि ने किसी तरह राजा जनमेजय के हाथ की अन्तिम आहुति दान माँग ली। नारदजी ने कहा—राजन ! इस प्रकार नागों का वंश नाश कर जो महापाप आप कर रहे हैं, उससे आपके पिता की आत्मा को कभी शांति नहीं मिल सकती। राजा जनमेजय ने पूछा—क्यों मुनिवर, हमने तो पिता की मृत्यु का बदला लिया है। तब नारद बोले—तुम्हारे पिता को तक्षक ने स्वेच्छा से नहीं काटा था, वह तो श्रृंगी ऋषि के शाप को पूरा करने के लिए कर्तव्यबद्ध था।

राजा जनमेजय समझ गए। इस पर वह महापाप का प्रायश्चित करने के लिए भी तैयार हो गए। तब नारदमुनि ने कहा, "सामूहिक रूप से आपको और आपकी प्रजा को प्रतिवर्ष नागों की पूजा करनी चाहिए।" कहते हैं तभी से नाग-पंचमी के दिन नागों की पूजा प्रारम्भ हुई। भागवत में भगवती के रक्षक के रूप में प्रजा द्वारा नाग का उल्लेख भी मिलता है।

महाभारत के शांतिपर्व में पद्मनाग का रोचक वर्णन मिलता है। पद्मनाग निमिषारण्य में रहता था। वह अध्ययनशील, धर्म-परायण, तपस्वी, नैतिक आचरण में श्रेष्ठ, यज्ञ करने वाला, दयालु और सत्यपरायण था। वह सूर्यदेव के पहिए वाला रथ चलाता था। एक बार एक ब्राह्मण धर्मार्थ दुनिया के झंझटों से तंग आकर पद्मनाग के पास उपदेश सुनने के लिए आया। उस नाग ने तपश्चर्या के गुणों पर प्रकाश डालकर ब्राह्मण की शंका का समाधान किया। परन्तु फिर भी शेषनाग का सम्बन्ध अनन्तशयनम विष्णु से और पद्मनाग का सूर्य से अवश्य ही कुछ अटपटा-सा लगता है, क्योंकि हम जानते हैं कि विष्णु का वाहन गरुड़ है, जो नागों का परम्परागत शत्रु है और सूर्य का स्थायी सारथी अरुण—गरुड़ का विकलांग भ्राता है।

महाभारत तथा अन्य पुराणों में श्रीकृष्ण और कालिया नाग के बीच संघर्ष का भी विस्तृत जिक्र है, जिस पर श्रीकृष्ण ने विजय प्राप्त की। श्रीकृष्ण को शेष-शयी भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है और उनके अग्रज बलराम को शेषनाग के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस उल्लेख से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि मथुरा जनपद बहुत प्राचीन काल से नागपूजा का केन्द्र रहा है। हरिवंशपुराण के अध्याय 11 और 12 के अनुसार पहले कालिया नाग कालिया झील में, जो यमुना नदी के बिलकुल समीप थी, रहता था और पास के घने वन में अनेक अन्य नागों का वास था। कालिया नाग बार-बार झील के जल में विष भर देता था, जिससे सभी लोग बड़े दुखी थे। अन्त में श्रीकृष्ण ने कालिया नाग को यह पाठ पढ़ाने के लिए कि पीने के जल में विष घोलना उचित नहीं,

एक दिन सभी ग्वाल-बालों के सामने झील में छलाँग लगा दी। वहाँ कालिया के सिर पर चढ़कर श्रीकृष्ण नृत्य करने लगे। कालिया नाग ने कृष्ण को कुंडली में जकड़ने का यत्न किया। श्रीकृष्ण ने उसकी एक भी चाल न चलने दी और अन्त में कालिया नाग को हार स्वीकार करनी पड़ी। उसने उनसे दया और क्षमा की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने कालिया नाग को इस शर्त पर प्राणदान दे दिया कि वह अपने सब सम्बन्धियों सहित झील से निकल जाए। अन्त में कालिया नाग ने ऐसा ही किया।

श्रीकृष्ण-जन्म के समय जब पिता वासुदेव उन्हें गोकुल ले जा रहे थे तब घोर वर्षा हो रही थी और बादल गरज रहे थे। उस समय शेषनाग ने पानी को रोककर अपने फणों से बालकृष्ण को घोर वर्षा से बचाया और यमुना पार करने में सहायता दी। इसी तरह एक बार कंस ने आदेश देकर जब अक्रूर को ब्रज में कर इकट्ठा करने का कार्य सौंपा, तो वापसी में श्रीकृष्ण और बलराम भी उनके साथ मथुरा चले। मार्ग में अक्रूर यमुना के किनारे रथ से उतर गये और यमुना के निकट नाग सरोवर में नागराज अनन्त के प्रति आदर प्रकट करने के लिए उन्होंने जब यमुना में डुबकी लगाई तो श्रीकृष्ण को घनघटा से श्यामवर्ण और पीताम्बर पहने, शेषशैया में विराजमान देखा। अक्रूर ने जब पानी से बाहर सिर निकाला, तो उसने श्रीकृष्ण और बलराम को रथ पर ही बैठे पाया। फिर और डुबकी लगायी, तो फिर वही दिव्य रूप पानी में नज़र आया। उनको पूरा विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण कोई साधारण व्यक्ति नहीं है और वापस आकर उनके पैरों में पड़ गए।

उपर्युक्त विवरण से हिन्दू संस्कृति की संश्लेषणात्मक शक्ति का प्रचुर आभास मिल जाता है। निस्सन्देह बौद्धधर्म ने नागपूजा को एक नया रूप दिया, परन्तु मूल विचारधारा में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आ पाया। ऐसा प्रतीत होता है, कि प्रारम्भ में नागपूजा का अन्य पूजा के साथ विरोधाभास-सा था, परन्तु राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप नागपूजा के अंश भी धीरे-धीरे हिन्दुओं के साथ मिल गए, जिसके अवशेष आज भी देश के अनेक जनपदों में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं।

कुरुक्षेत्र में कौरवों और पांडवों के युद्ध में कहते हैं, अचानक भूमि फट गई

वासुदेव श्रीकृष्ण को यमुना पार ले जा रहे हैं

और नागराज तक्षक का पुत्र अश्वसेन जो पाताललोक में सो रहा था, जाग उठा। क्योंकि खाण्डव वन में अग्निकाण्ड के फलस्वरूप वह अर्जुन के साथ वैर भाव रखता था, वह अर्जुन के विरुद्ध लड़ने के लिए कौरवों की ओर हो गया। उसने तीर का रूप धारण किया और वीर कर्ण के तरकश में प्रवेश किया। जब कर्ण ने वह तीर चलाया तो अर्जुन ने उससे बड़ी फुर्ती से अपने-आपको बचा लिया। लेकिन अश्वसेन नाग के विष से अर्जुन का सुनहरा किरीट भस्म हो गया। उसका वार जब खाली चला गया तो वह वीर कर्ण से बोला—मुझे ठीक निशाना बाँधकर चलाओ और मैं आपके और अपने शत्रु को मृत्युलोक पहुँचाऊँगा। नेकदिल कर्ण ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। यह सुनकर नाग ने अपना वास्तविक रूप धारण किया और एक प्रज्वलित उल्का की भाँति आकाश से तीव्र गति से अर्जुन की ओर बढ़ा। परन्तु अर्जुन ने उसे देख लिया और छह तेजधार तीरों से उसके शरीर को छलनी कर दिया, वह मृत होकर धरती पर गिर गया।

इसी प्रकार शेषनाग को, जिसे कई स्थान पर अनन्त नाग भी कहा गया है, हिन्दू धार्मिक परम्परा में विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। शेषनाग का नागों में वही स्थान है जो राक्षसों में रामभक्त विभीषण का। कहते हैं जब सभी नागों से माँ कद्रु अपनी झूठी बात सत्य सिद्ध करने के लिए भर्त्सना करने लगी, तब शेष ने उसकी बात सुनकर अनसुनी कर दी और अपने भाइयों से अलग जाकर, कहीं वन में घोर तपस्या करने लगा। प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वरदान माँगने को कहा। शेषनाग ने अनन्त रूप से धर्म, शांति और तप के मार्ग पर आनन्दित रहने का वरदान माँगा। सहस्रफणधारी, कमल-तन्तु के समान श्वेत वर्ण, मणि-मण्डित मौलि, एक कुण्डल धर, नील वस्त्रधारी भगवान शेष का यह संकर्षण-विग्रह जगत् का आधार है। कहते हैं ब्रह्मा के कहने पर ही सम्पूर्ण पृथ्वी का भार भगवान शेष ने एक फण पर राई के समान स्थित कर उठा रखा है। प्रलय के समय उनके फुंकार की अग्नि में विश्व सूखे गोबर के समान भस्म हो जाता है, ऐसी धारणा प्रचलित है।

प्रलयकाल में शेषशैयनम भगवान विष्णु शेषनाग की सेज पर शयन करते हैं। भगवती लक्ष्मी चुपचाप उनके श्रीचरणों को दबाती हैं। शेषनाग अपने पूर्व फण से उनके नाभिनाल के लोक पद्म को, उत्तर फण से उनके चरणों को आच्छादित किए रहते हैं। ये अपना पश्चिम फण फैलाकर सर्वेश को व्यंजन करते हैं, तथा अन्य फणों से भगवान शंख, गदा, पद्म, नन्दकखंग, दोनों तूणीर, धनुष, गरुड़ आदि को धारण किए रहते हैं। पाताल या नागलोक में नाग कन्याएँ भगवान अनन्त के महाभोग को नाना प्रकार के सुगन्धित अंगरागों से उपलिप्त करती रहती हैं। मुनिजन ईष्टसिद्धि के लिए उनकी आराधना करते हैं। सनकादि उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रभु का यह रूप प्राण-तत्त्व का अधिष्ठान है। वे समस्त बल के आश्रय हैं। वे ही परमोपदेष्टा आदिगुरु माने जाते हैं।

निस्सन्देह सभी नागदेवताओं में हिन्दू लोग प्रायः शेषनाग को भगवान विष्णु का शेषशयी कहकर, भगवान शिव के गले से लिपटे रहने के कारण, उन्हें भी श्रद्धापूर्वक पूजते हैं। हिन्दु पुराण कथनानुसार भगवान शेषनाग के कई अवतार माने जाते हैं। इसका विशद वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य के युद्ध कांड के 128वें सर्ग के 120वें श्लोक में इस प्रकार किया है :

> आदि देवो महाबाहुर्हरिनर्नारयणः प्रभुः
> साक्षाद् रामो रघुश्रेष्ठः शेषो लक्ष्मण उच्यते ।

लक्ष्मण की अद्भुत सामर्थ्य और अद्वितीय पराक्रम का जिक्र गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के लंका कांड के 54वें दोहे में निम्नलिखित शब्दों में किया है :

मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाई।
जगदाधार शेष किमि उठै चलै खिसिआई ।।

इसी प्रकार महाभारतकाल में भगवान श्रीकृष्ण के अग्रज बलराम या बलदेव शेषनाग के अवतार माने जाते हैं। महर्षि वेदव्यास ने श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कन्ध के 15वें अध्याय में स्पष्ट शब्दों में इस तथ्य की स्वीकारोक्ति की है। इसका प्रमाण मथुरा के आसपास अब तक चली आ रही लोक-परम्परा से भी चलता है। महाभारत में एक अन्य स्थान पर दुर्योधन भीम की शक्ति से जलता था। सभी पांडवों को और विशेषकर भीम को समाप्त करने के उसने अनेक षड्यन्त्र रचे। इसी तरह एक बार उसने भीम को भोज पर आमन्त्रित किया। भीम को उसने विष-मिला भोज खिलाया। भोज खाकर विष के प्रभाव से भीम बेहोश होकर गिर पड़ा तो दुर्योधन ने उसे नदी में फेंक दिया। नदी में रहने वाले नागों ने जब उसे काटा तो भीम के शरीर से विष का प्रभाव मिट गया और वह जागकर बाहर निकलने में सफल हुआ।

अथर्ववेद के विराजवाक् प्रकरण में इससे होने वाली सृष्टि का वर्णन है। गाय के दोहन द्वारा सृष्टि-पालन का रोचक विवरण है। असुर, पितृ, मनुष्य, ऋषि, देव, गन्धर्व लोक और इतरजन-लोक के दोहन के बाद सर्प लोक का दोहन ऐसे वर्णित है : "उसने उत्क्रमण किया। वह सर्पों के पास आयी। सर्पों ने कहा, 'हे विषवती ! यहां आओ।' तक्षक वेश लिये उसका वत्स था और अलनुपाद वर्तन था। उसने वास्तव में उससे विष ही दूहा, सर्प सचमुच ही विष पर जीवन यापन करते हैं।

इसी तरह महाकवि माघ ने शिशुपालवध में—**सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रवः** द्वारा राजा को कूटनीतिक, सामादि उपायों से दुश्मनों को वैसे ही वश में कर लेने का सुझाव दिया है जैसा कि तंत्र (गारुड़ी विद्या) तथा आवाप विद्या (सर्पों को वश में करने की विद्या) के ज्ञाता और सर्प विष को झाड़ने और उनकी शक्ति अवरुद्ध करने वाले विष-वैद्य के द्वारा महासर्पों को वश में किया जाता है।

सम्राट हर्षवर्धन के नाटक 'नागानन्दम् के अन्तिम अंक में विद्याधरों का युवराज जीमूतवाहन नागजाति की एक अभागिन बुढ़िया के इकलौते बेटे शंखचूड़ को गरुड़ का कलेवा बनने से बचाने के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर देता है। उसकी दयावीरता से प्रसन्न भगवती गौरी अपने कमंडल के जल के छींटे देकर उसे जीवित कर देती है। गरुड़ का भी हृदय परिवर्तन होता है। वह अपने खाये हुए असंख्य नागों के कंकालों पर अमृत बरसाकर उन्हें फिर से जिला देता है और भविष्य में नागों को न खाने का वचन देता है।

महाकवि कालिदास के 'कुमारसम्भव' में ब्रह्मचारी के वेश में महादेव और पार्वती के वार्तालाप में ब्रह्मचारी पार्वती को समझाते हुए कहता है, "हे पार्वती ! विवाह के मंगलसूत्र से भूषित तुम्हारा हाथ सर्पों के आभूषणों से युक्त शंकर के हस्त को पाणिग्रहण के समय कैसे सहन करेगा ?"

काश्मीर में सुरिनसर या सनासर आज तक आध्यात्मिक दृष्टि से पवित्र समझी जाती है । पुराण कथा अनुसार इस झील की पवित्रता महाभारतकाल से जोड़ी जाती है । कहते हैं कि वनवास के समय पाण्डव जम्मू भी गए थे । इसी वनवास के दौरान अर्जुन ने नागकन्या उलुपी के असाधारण सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उससे गन्धर्व विवाह कर लिया । उनके संयोग से असाधारण वीर पुत्र बभ्रुवाहन का जन्म हुआ । पांडव कुछ समय वहां ठहरकर वापस इन्द्रप्रस्थ चले गए थे । इसलिए अर्जुन को पुत्र-जन्म की सूचना यथासमय नहीं मिली । लेकिन महाभारत युद्ध की समाप्ति पर जब पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को बभ्रुवाहन ने इसी खूनी सरोवर के समीप रोक दिया, तब अर्जुन और बभ्रुवाहन के बीच घोर युद्ध हुआ । बभ्रुवाहन के युद्ध-कौशल के सामने अर्जुन की एक न चली और वह बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े । शीघ्र ही बभ्रुवाहन की माँ उलुपी को पता लग गया । वह दौड़ी-दौड़ी आयी और पुत्र पर क्रोधित होकर कहने लगी कि नासमझ पुत्र ने अपने पिता को मार दिया है । यह जानकर बभ्रुवाहन को बहुत पछतावा और दुख हुआ और वह पिता की जान बचाने का उपाय सोचने लगा । अन्त में किसी प्रसिद्ध वैद्य द्वारा उसे मालूम हुआ, कि इसका इलाज पाताल लोक में उगने वाली एक विशेष प्रकार की जड़ी-बूटी से संभव है । बभ्रुवाहन ने तुरन्त पूरी शक्ति से भूमि में तीर छोड़ा । यह जादुई तीर धरती में से छेद कर नीचे पाताललोक में चला गया और वांछित जड़ी-बूटी उखाड़कर ले आया । औषधि लगते ही अर्जुन होश में आ गए । जिस जगह से तीर धरती में गया था और जिस दूसरे मार्ग से तीर वापस आया था, वे दोनों झीलें जम्मू के दोनों ओर हीरे की भाँति चमकती हैं । अब तक नवविवाहित दम्पति इन झीलों की तीन बार परिक्रमा कर नागदेवता का आशीर्वाद प्राप्त कर जीवन सुखी बनाने की कामना करते हैं ।

बौद्ध एवं जैन साहित्य में नाग

नागों का उल्लेख बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों में भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । बौद्ध साहित्य में नागों को महात्मा बुद्ध का उपासक बताया गया है । प्रयाग संग्रहालय में एक ऐसी मूर्ति है, जिसमें वट वृक्ष के नीचे एक फन वाले नाग को बुद्ध की पादुकाओं की रक्षा करते हुए दिखाया गया है । बौद्ध ग्रंथों में दिशाओं के रक्षक के रूप में छायापति, कान्हागौतमाक्षी, विरूपाक्षी एवं ऐरावत नामक इन चार नागों को प्रतिष्ठित किया गया है ।

नागों को महात्मा बुद्ध की जीवन की घटनाओं के साथ भी अनेक स्थलों पर जोड़ा गया है। कहते हैं, लुम्बिनी उपवन में महात्मा बुद्ध के जन्म के समय दो नागराज -- नन्द और उपनन्द आदर प्रकट करने के लिए प्रस्तुत हुए और बाल बुद्ध को शीतल और गर्म जल से नहलाने में सहायता की। इसी तरह एक अन्य नाग मच्छलिंदा ने गया के स्थान पर महात्मा बुद्ध के अनवरत तपस्या करते समय अपना बड़ा फन फैलाकर वर्षा, ठंड और आँधी से रक्षा की।

कहते हैं, महात्मा बुद्ध एक बार जब उस समय के प्रसिद्ध पंडित उरुवेला कश्यप के आश्रम में गए और उसे अपना उपदेश देना चाहा, तो उसने इसलिए सुनने से इनकार कर दिया कि उसने एक बड़े भयानक नाग को काबू कर रखा है, जिस पर बुद्ध का भी कोई वश नहीं चल सकता। इस पर महात्मा बुद्ध और नाग का पूजा-स्थली पर बल-परीक्षण हुआ और महात्मा बुद्ध ने उस नाग को अपनी श्रेष्ठ शक्ति से काबू कर भिक्षा पात्र कमंडल में बन्दी कर दिया। इस पर उरुवेला काश्यप महात्मा बुद्ध की दिव्य शक्ति से बहुत प्रभावित हुआ और उनका अनुयायी बन गया। इस कथा को साँची, अमरावती और गन्धर्व कला में कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। स्मरण रहे, कश्यप वंशावली की एक शाखा मां कद्रू से उत्पन्न कद्रवा नाग थे और कश्यपों की वंश परम्परा में बहुत प्राचीनकाल से नागपूजा की परम्परा रही है। कश्यप ब्राह्मणों की अन्य वंशावलियों में उन्हें मानवा और इक्ष्वाकु से भी जोड़ा गया है, जिनसे महात्मा बुद्ध के वंश का सम्बन्ध रहा। इन प्रमाणों से महात्मा बुद्ध भी कद्रवा वंश के सजातीय प्रतीत होते हैं। स्पष्टतः बौद्ध धर्म की पूजा-परम्परा में भी नागपूजा को आत्मसात किया गया। साँची में महात्मा बुद्ध की उपस्थिति वैद्यशाला में पाषाण का आसन रखकर प्रकट की गई है। आसन पर पाँच फणोंवाला नाग दिखाया गया है। परन्तु अमरावती पट्टी पर इस कथा में बुद्ध की उपस्थिति अग्निशाला के दो पदचिह्नों द्वारा दिखाई गई है। गन्धर्व मूर्तिकला में बुद्ध को कश्यप बन्धुओं के मध्य दिखाया गया है। लाहौर (अब पाकिस्तान में) संग्रहालय में उपलब्ध एक मूर्ति के टुकड़े में महात्मा बुद्ध को भिक्षा-पात्र में कश्यप बन्धुओं से भेंट करते हुए दिखाया गया है।

प्रसिद्ध बौद्धग्रंथ चम्पैया जातक में उल्लेख है कि जैसे ही नागराज चम्पक ने बाम्बी पर निवास कर विश्राम करना आरंभ किया, आने-जाने वाले लोगों ने उसकी पूजा और पुत्रदान की प्रार्थना की। नागों को प्रायः उर्वरता का प्रतीक भी माना जाता रहा है। इसलिए नाग-पूजा परम्परा भारतवर्ष के अनेक भागों में प्रचलित है। आज भी तमिल क्षेत्र में बाँझ स्त्रियाँ प्रायः शपथ लेती हैं कि यदि वे पुत्रवती हो गईं, तो घर में नाग की स्थापना करेंगी।

बौद्ध जातक में चार नागाओं का उल्लेख भी मिलता है। कहते हैं, एक बार

तत्कालीन नागराज सम्राट सैनिकों के किसी अपमानजनक व्यवहार से रुष्ट हो गए और क्रोधित होकर उन्होंने सम्राट को नष्ट करने की खातिर चार नाग युवकों को भेजा, जिनमें यह शक्ति थी कि वे श्वास द्वारा विषमयी आग उगलकर नष्ट कर सकते थे। इसी प्रकार की एक और जातककथा में क्रुद्ध नाग का उल्लेख आता है। एक बार साम के माता-पिता अनजाने में किसी प्रसिद्ध नागों की बाम्बी पर खड़े हो गए थे। इस पर क्रुद्ध होकर नागों के नथुनों से जो आग निकली उससे वे अन्धे हो गए। चम्पय जातक में भी इसी प्रकार की धारणा को बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित किया गया है कि नाग अपनी सांसों से किसी नगर को जला भी सकते हैं। भूरिदत्त जातककथा में एक नाग कहता है—मैं नाग हूं, जिसके पास जादुई आग और अलौकिक शक्ति है, मैं अपने दंश की आग से समृद्ध नगर को समाप्त कर सकता हूं।

बौद्ध धर्म की महायान शाखा के नागार्जुन जब इस संसार में आए, तब नागों ने उन्हें अपने सागरस्थित रहस्यमय लोक में निमन्त्रित किया और उसे उन्हें सौंपा। इसी प्रकार बौद्ध कथाओं में एक प्रसिद्ध कथा है कि महात्मा बुद्ध को जब ज्ञान का प्रकाश हुआ, उसके बाद जिस सोने के पात्र में उन्होंने पहली बार भोजन किया, उसे नागराज सागर ने काबू में कर लिया।

बौद्ध पुराणों में अनेक स्थलों पर नागों को बौद्ध-भक्त बताया गया है। महात्मा बुद्ध के प्रभाव से वे भी अपनी भयंकरता, क्रूरता और हिंसा वृत्ति त्याग कर शुद्धाचरण वाले बन गए। बौद्ध परम्परा में उन्हें अधिक आदरणीय स्थान नहीं दिया गया अपितु उन्हें घटिया स्थान मिला है।

बौद्धधर्म के साथ जैनधर्म में भी नागों को विशेष स्थान मिला है। इस सम्प्रदाय में नाग-परम्परा का अंश सातवें जैन तीर्थंकर सुपार्श्व और तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के साथ जुड़े नाग प्रतीकों से भी प्रकट होता है। जैन ग्रंथों के अनुसार एक बार पार्श्वनाथ ने कथा मुनि को तप करते समय हवनकुंड में एक साँप की आहुति देते देख लिया। पार्श्वनाथ ने साँप को प्राणदान दिया और उनका पुनर्जन्म नागों के धनि राजा धारणा के नाम से हुआ और कथा मु नि का पुनर्जन्म पूर्वजन्म की निर्दयता के कारण असुर मेघाहमलिन के नाम से हुआ। एक दिन जब पार्श्वनाथ कौशाम्बी वन में धूप में खड़े थे, नाग राजा धारणा दौड़े-दौड़े उनके पास कृतज्ञता एवं आदर प्रकट करने आए और तेज धूप से उनके शरीर की रक्षा करने के लिए उन पर छत्री फैला दी।

कई बार नागों को वर्धमान महावीर के सेवक के रूप में भी दिखाया गया है। यही नहीं, जैन मूर्तिकला में नागों को वर्धमान महावीर की या स्तूप की पूजा करते हुए दिखाया गया है।

पंचतन्त्र में एक नागकथा है कि हरिदत्त नामक एक निर्धन ब्राह्मण खेतीबाड़ी

से अपना गुजारा करता था। एक दिन अपने खेत में उसने एक बड़ा नाग देखा। उसे क्षेत्र देवता समझकर उसने उसकी पूजा की और उसे दूध दिया। दूसरे दिन जब वह खेत में आया तो उसे सोने का सिक्का पड़ा मिला। उसने प्रतिदिन ऐसा ही करना शुरू किया और हर दिन उसे सोने का एक सिक्का मिलता रहा। हरिदत्त का पुत्र लालची था। उसने सोचा कि जिस बाम्बी में साँप रहता है, वह सोने के सिक्कों से भरा हुआ होगा। उसने नाग को मारकर सारा धन हड़पने की योजना बनाई परन्तु इस प्रयत्न में जीवन से हाथ धो बैठा। जब हरिदत्त को यह मालूम हुआ, उसे बड़ा दुख हुआ। परन्तु नाग ने उसे एक दिन अमूल्य हीरा देकर कहा कि वह फिर न आए।

पंचतन्त्र की दूसरी कथा में मानव माँ-बाप का पुत्र एक नाग था। उसका विवाह एक कन्या से हुआ। वह सुहागरात को मानव का रूप धारण कर लेता है, परन्तु उसके पिता ने उसकी साँप की खाल जला दी जिससे वह फिर साँप का रूप धारण न कर सका। पंचतन्त्र में नाग सम्बन्धी ऐसी अनेक कथाएं हैं।

'कथासरितसागर' में नाग को प्रायः झील या तालाब का निवासी बताया गया है। एक कथा में ईर्ष्यालू नाग अपनी पत्नी और उसके प्रेमी को आग के विस्फोट में मार देता है।

नाग शापकथा में नाग श्रीकंठ की संरक्षक आत्मा के रूप में प्रकट होता है। श्रीकंठ उत्तरी भारत के क्षेत्र स्थानेश्वर का निवासी था। इसी प्रकार नाग और गरुड़ की परस्पर शत्रुता की अभिव्यक्ति जीमूतवाहन की कथा से प्रकट होती है। जीमूतवाहन एक भाग्यहीन नाग युवक को बचाने के लिए अपना बलिदान देता है। 'कथासरितसागर' में यह कथा दो बार आयी है। 'वृहत् कथामंजरी' में भी यह कथा है। बैताल की 25 कथाओं में यह कथा वर्णित है। हर्ष ने 'नागानन्द' में इस कथा को नाटकीय रूप दिया है। इस कथा का चित्रांकन प्रथम बार गंधार कला में उपलब्ध होता है। अमरावती के पाषाण गरुड़ को पाँच फणों वाले नाग की चोंच में पकड़े दिखाया गया है। इसी प्रकार मथुरा के कंकली टीला में मिले शिल्पकला के टुकड़े में मिलता है।

एक और रोचक कथा है। कहते हैं एक बार वत्सराज एक हिरण का पीछा करते हुए वन में से गुजर रहे थे, वहाँ उन्होंने एक सपेरे को साँप पकड़े हुए देखा। दया भाव से सपेरे से राजा ने साँप को छोड़ देने के लिए कहा। सपेरे ने उत्तर दिया—"स्वामी, यह मेरा जीवन-निर्वाह है। मैं सर्प नचाकर गुजारा करता हूँ।" यह सुनकर राजा ने सपेरे को एक कंगन दिया और उसने साँप छोड़ दिया। यह देखकर साँप बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने वत्सराज को एक विचित्र बाँसुरी दी। बाँसुरी बजाकर वत्सराज, कहते हैं, हाथी पकड़ते थे।

नल-दमयन्ती की कथा में जब राजा नल वन में भटक रहे थे, तो उन्होंने एक जगह वन में जलती हुई आग से एक नाग की प्राण-रक्षा की। नाग ने राजा नल से दस पग और भरने की प्रार्थना की। राज नल ने ऐसा ही किया। दसवें कदम की समाप्ति पर नाग ने राजा नल को दंश मारा। परन्तु नाग ने ऐसा नल को बचाने के लिए किया, ताकि नल को कोई पहचान न सके। दंश के कारण नल कुरूप हो गया और इस कारण उसे एक राजा के पास नौकरी मिल गई। नाग ने उसे ऐसे कपड़े दिए, जिन्हें पहनकर वह पुनः अपना रूप प्राप्त कर सके। अन्त में ऐसा ही हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागों का बखान हर रूप में भारतीय साहित्य में उपलब्ध है। उनका पूज्य रूप वही समझा जाता है, जिसमें वह मानव के प्रति दया और कृपा का प्रदर्शन करते रहे हैं, अन्य नहीं।

उपर्युक्त विवरण से भारतीय संस्कृति की संश्लेषात्मक शक्ति का प्रचुर आभास मिल जाता है। निस्सन्देह बौद्धधर्म एंव जैनधर्म ने नागपूजा परम्परा को एक नया रूप दिया, परन्तु मूल विचारधारा में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया। ऐसे संकेत मिलते हैं, कि आरंभकाल में नागपूजा का अन्य भारतीय पूजा-पद्धतियों के साथ विरोधाभास रहा, परन्तु इतिहास के बढ़ते चरण के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप नागपूजा के कुछ अंश भी धीरे-धीरे, हिन्दुओं के अन्य देवकुल के साथ मिल गए, जिनके अवशेष आज भी देश के अनेक जनपदों में किसी न किसी रूप में उपलब्ध हैं।

भारतीय कला एवं अभिलेखों में नाग

कलाकार अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं कौशल से पार्थिव में अपार्थिव भावों का सृजन करता है। जड़ में चेतना का आलोक भरता है, उसमें जीवन का स्पन्दन, गति और उल्लास लाता है।

कला और धर्म में से कौन पहले आया, सम्भवतः इसका ठीक निर्णय न हो सके। यह आदिम अवस्था में कुछ अन्तर से प्रकट हुए। परंतु अपने शिशुकाल में ही धर्म ने कला को वरण किया, क्योंकि आदिकाल से आज तक असंख्य मंदिर-मूर्ति, स्तूप, भीत्तिचित्र, चित्रकारी, संगीत, नृत्य एवं साहित्य के रूप में इन दोनों के परिणय से ये सृष्टियाँ होती रही हैं। धर्म शायद कला के आकर्षक एवं प्रेरणात्मक गुणों के अभाव में नीरस, निर्जीव होकर अब तक मिट गया होता। धर्म ने कला को गौरव प्रदान किया और कला ने धर्म को अपना सौन्दर्य और अभिव्यक्ति के लिए साधन दिया।

भारतीय कला में नागों का उल्लेख मोहन-जोदड़ो, हड़प्पा और सिन्धु सभ्यता के अवशेषों से स्पष्ट हो जाता है। इनमें नाग आधे मनुष्य और आधे साँप दिखाए गए हैं।

जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया गया है, शिव से लिपटे नाग, बौद्ध एवं जैन तथा गुप्त-कालीन मूर्तियों में तथा तत्कालीन लोककला में भी नागपूजा के प्रचुर चिह्न उपलब्ध हैं। नागपूजा के आदि ऐतिहासिक काल के अनेक सुनिश्चित प्रमाण पुरालेखों में मिलते हैं। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता बहुलर ने भारतीय एन्टीक्वेरी (पृ० 141-2) में खोष्टी अभिलेख के बारे में लिखा है, कि दत्ती के पुत्र थेरानोरा ने सम्वत् 113 में श्रावण के शुक्ल पक्ष में सभी नागों की पूजा के लिए एक सरोवर बनाया। इस अभि-लेख की लिपि-पटिका तक्षशिला ताम्रपत्र और
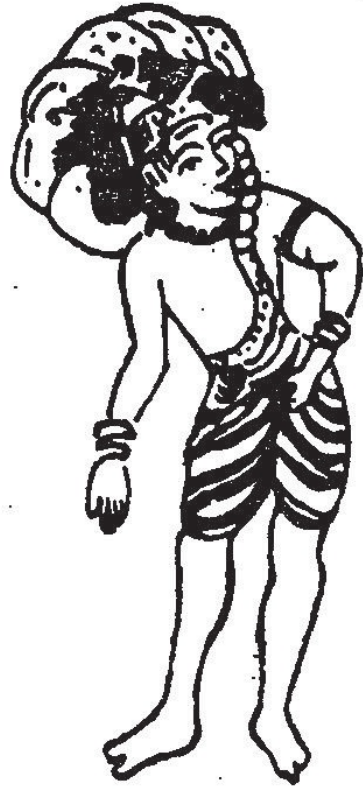
प्राचीन शिल्प में नागराज

मथुरा सिंह-शीर्ष के शांडष अभिलेख से मिलती-जुलती है। अनुमान लगाया गया है कि यह अभिलेख पहली शताब्दी ईस्वी का होगा और थेरानोरा नामक किसी यूनानी वीर का हो सकता है, जो उस समय के गांधार क्षेत्र में रहता था, जहाँ यह अभिलेख मिला है।

ऐसे प्रतीत होता है कि मथुरा प्राचीन काल से नागपूजा का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा; क्योंकि मथुरा में नागपूजा के बहुत सारे अभिलेख और मूर्तिकला के नमूने मिले हैं, जिनमें इस्वी से भी काफी पहले नागपूजा परम्परा के प्रमाण मिलते हैं। मथुरा से छह मील की दूरी पर स्थित भादल ग्राम में मिली नागमूर्ति के निचले भाग पर अत्यन्त प्राचीन अभिलेख अंकित हैं। कहते हैं, स्थानीय परम्परा अनुसार स्थानीय बाँझ स्त्रियाँ सन्तति की इच्छा से यहाँ आती थीं। इस मूर्ति में नाग दो नागनियों के साथ खड़ा है। सिर पर सात फनों वाली छतरी है और द्विशाखित जिह्वायें बाहर निकली हैं। पीठिका पर 12 मनुष्य आकृतियाँ हैं, जिनमें पाँच स्त्री, पाँच पुरुष और दो लड़के शामिल हैं। स्पष्टत: वे पूजा करनेवाले हैं। कुषाणकाल के आठवें वर्ष में यह मूर्ति निर्मित हुई और इस पर अंकित अभिलेख से विदित होता है कि इसके समीप सरोवर और उपवन नाग स्वामी के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए निर्मित की गई है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान बहुलर ने एक महत्त्वपूर्ण नाग अभिलेख का उल्लेख किया है। नागराज दधिकरण के पवित्र स्थान पर मथुरा के कलाकार छन्दक भ्राता के पुत्र, जिनमें नन्दीबाला इत्यादि लड़कों ने वर्षाऋतु के तीसरे मास के पाँचवें दिन, 26वें वर्ष में यहाँ पाषाण शिला स्थापित की। इस अभिलेख में दधिकरण को नागेन्द्र और भागवत कहा गया है और यही उपाधि उपर्युक्त अभिलेख में नागस्वामी के लिए प्रयुक्त की गई है। यह अभिलेख ब्राह्मी लिपि में कुषाणकाल में लिखा गया है और शिला, जिस पर यह लिखा गया है, जमालपुर टीला पर मथुरा नगरी के दक्षिण में दो मील की दूरी पर स्थित है। इस अभिलेख से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मथुरा में नागराज दधिकरण एक प्रसिद्ध नाग हो गुजरा है। यह तथ्य हेमचन्द्र की 'अभिधा चिन्तामणि' पर टीका से भी सिद्ध हो जाता है। श्रीकृष्ण और बलदेव अपनी दैनिक प्रार्थना में उनसे याचना करते थे। ऐसे लगता है कि मथुरा में नागपूजा, भागवत पूजा पद्धति का ही भाग बन गया था।

मथुरा संग्रहालय में कुषाणकाल की अनेक नाग प्रतिमाएँ मिली हैं। इनमें से एक 2 मीटर 30 सेंटीमीटर ऊँची है। इसी प्रकार पाँचवीं शताब्दी में निर्मित शेष-शैयनम भगवान विष्णु की प्रतिमा मिली है। प्रयाग संग्रहालय में एक ऐसी मूर्ति मौजूद है, जिसमें वट वृक्ष के नीचे एक पाँच फणवाले नाग को महात्मा बुद्ध की पादुका की रक्षा करते हुए दिखाया गया है।

गुप्तकालीन लघु मृगा मूर्तियों में भी नागपूजा के प्रमाण मिले हैं, जो पटना संग्रहालय में उपलब्ध हैं। इन छोटी-छोटी मूर्तियों पर नाग छत्री अंकित है, जो नागदेवता की पहचान का चिह्न है। पुरानी आहत मुद्राओं में नाग यंत्र प्रायः अंकित मिलते हैं।

मथुरा में ही हविषका काल के अन्य महत्त्वपूर्ण अभिलेख नागमूर्ति पर अंकित मिले हैं। यह मूर्ति मथुरा से 5 मील दूर छर गाँव में मिली है। इस मूर्ति में नाग-देवता अपना दाहिना हाथ अपने सिर पर ऐसे उठाए दीखता है, जैसे वह अभी किसी को मारना चाहते हों, इस प्रतिमा का बायां हाथ टूट गया है, जिसमें कंधे के सामने हाथ में अनुमानतः एक प्याला था। सिर पर सात फणवाले नाग देवता की छत्रछाया है। अभिलेख से प्रकट होता है कि मूर्ति हविषका राज्य के 40 वें वर्ष में जल-सरोवर पर स्थापित की गई थी। इसका अन्तिम वाक्य है—नाग-देवता हम पर प्रसन्न रहें।

मथुरा में मिले जैनमत के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति के सिर पर सात फणों वाला नाग बना है जो उनका बोध-चिह्न समझा जाता है। अमरावती के स्तूपों और कोणार्क के मंदिरों में आज भी नागों की प्राचीन मूर्तियाँ प्राप्य हैं। एलोरा गुफाओं में नागों द्वारा लक्ष्मी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए दिखाया गया है। देवगढ़ के मंदिर में गजेन्द्र मोक्ष को भगवान विष्णु द्वारा नागफांस से मुक्त कराते दिखाया गया है।

ग्राऊस को मथुरा जनपद की सदाबाद तहसील में ऐसी नागमूर्ति मिली है जिस पर सात फणों वाले सांप की छत्रछाया है और जिह्वा द्विशाखित है। मथुरा से पूर्व दिशा की ओर आठ मील की दूरी पर इतौती ग्राम में फोगल को चार फीट ऊँची नाग प्रतिमा मिली है। स्थानीय रूप में इस मूर्ति को ग्रामीण लोग 'भाई' पुकारते थे और यह स्थान 'बाई के पोखर' नाम से प्रसिद्ध रहा। यह स्थान भी नागपूजा के अन्तर्गत आता है और कुषाणयुग की देन है।

नागों के अन्य अवशेषों में मूर्तिकला के अनेक भागों में साँप कुण्डली मारकर बैठा दिखाया गया है। इसमें से खोये हुए भाग का मानव शरीर का ऊपरी भाग फणदार सर्प के साथ होगा। इस टूटी हुई मूर्ति पर एक अभिलेख अंकित है, जिससे विदित होता है कि यह प्रतिमा चौथी ईस्वी की है।

गुप्तकालीन नाग की एक अन्य मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में है। इस मूर्ति के बाजू तो टूटे हुए हैं, पर सिर पर सात फणों वाला नाग अंकित है। इसके दाएं हाथ की ओर नाग और बाएं हाथ की ओर घुटनों के बल झुका हुआ आदर में हाथ जोड़े संभवतः नागराज दधिकरण है।

मथुरा जनपद में यत्र-तत्र उपलब्ध अनेक नाग मूर्तियाँ 'भाई दाऊ' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसे लगता है, जैसे सम्भवतः भागवत-प्रेमियों ने नाग-उपासकों में

अपना धर्म फैलाने के लिए श्रीकृष्ण जी के बड़े भाई बलराम को शेषनाग के अवतार के रूप में प्रसिद्ध करने का प्रयास किया होगा।

भारत के अन्य जनपदों में भी नाग-उपासना के अनेक कलात्मक अवशेष प्राप्त हैं। 1935-36 में राजगिर के स्थान पर खुदाई के फलस्वरूप पाषाण मूर्तियों के भग्न भाग प्राप्त हुए हैं, जिन पर दो नाग अंकित हैं। इनको जोड़कर मूर्तियों के निचले भाग में आठ नाग साथ खड़े दिखाई देते हैं और अस्पष्ट अभिलेख पीठिका पर अंकित हैं। ऊपरी सजी हुई परत पर दोनों ओर ताक है। बायीं ओर एक नागी गद्दी पर भद्रासन में पांव पाषाण पीठिका पर रखे बैठी है। इस पीठिका पर अभिलेख में भगिनी सुभाग शब्द अंकित है। दायें ताक का रूप कुछ टूटा हुआ है और केवल साँप के फणों का छत्र ही दृष्टिगोचर होता है। इन सबके ऊपर खड़ी कुछ आकृतियाँ नजर आती हैं, जिससे संकेत मिलता है कि किसी सम्राट ने मणिनाग को प्रसन्न करने के लिए यह कलाकृति बनवाई। ये अभिलेख कुषाण काल के हैं और मूर्तियाँ मथुरा के बलुआ पाषाण पर निर्मित हुई हैं। इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—एक तो यह कि पूर्व में राजगिर तक मथुरा की मूर्तिकला प्रसिद्ध रही और दूसरे राजगिर तक नागपूजा का प्रभाव प्रकट होता है। यह तथ्य साहित्यिक स्रोतों से भी स्पष्ट होता है। बुद्धघोष ने वैभारा पर्वत के नीचे सुन्दर और विशाल नागलोक का चित्रण किया है।

भारतीय कला में नाग कहीं पशु रूप और कहीं अर्ध-मानव रूप में प्रकट हुआ है, परन्तु सभी के शीष पर सर्पफण का प्रदर्शन मिलता है। सबसे साधारण या आदि-रूप, जिसमें नाग को भारतीय कला में प्रदर्शित किया गया है, वह है सर्प

रूप। परन्तु जैसे देवताओं की मनुष्य से विभिन्नता दो से अधिक बाहुओं द्वारा दिखाई गई है, उसी प्रकार दिव्य सर्प अर्थात् नागों को भी कई सिरों वाला दिखाया गया है। प्राचीन पौराणिक साहित्य में भी नागों की इसी विशेषता का उल्लेख मिलता है। कला में नागों के सिरों में विभिन्नता मिलती है, परन्तु एक सत्य का आभास अवश्य होता है और वह है, कि सिरों की संख्या हमेशा असम मिलेगी। ये तीन, पाँच या सात ही मिलेंगे और प्रायः पाँच की संख्या अधिक कलाकृतियों में उपलब्ध है।

महाभारत में दो नाग मन्दिरों का उल्लेख मिलता है, जो गिरिव्रज में मणि-नाग और स्वस्तिका के नाम से प्रसिद्ध रहे। सम्भवतः आजकल का मणियर मठ ही महाभारत में वर्णित मणिनाग का मंदिर रहा हो। इस स्थान पर मिट्टी के कुछ मर्तबान ऐसे बने हैं, जिनकी टोंटी पर नागों के फण बने हैं। इसी प्रकार के मर्तबान द्वारा आज भी बंगाल के अनेक जनपदों में नागपूजा की जाती है।

नागों को बौद्धकालीन कला में प्रमुख स्थान मिला है। बौद्धकाल से पहले और बाद में भी भारतीय पुराणों एवं कला में नागों को स्वतन्त्र देवता माना गया है। बौद्धकला एवं साहित्य में उन्हें मनुष्य या अर्धदिव्य रूप दिया गया है। इसमें कभी उन्हें भयानक विद्रोही प्रदर्शित किया गया है, जो महात्मा बुद्ध की महान, नियन्त्रक एवं आकर्षक शक्ति की अधीनता स्वीकार कर लेते। फोगल ने भी अपनी प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक 'भारत में नागपूजा' में बौद्ध साहित्य एवं कला में नाग-कथाओं का विशेष उल्लेख किया है।

भरहुत मूर्तिकला में अनेक नागराजाओं को दिखाया गया है। एक मूर्ति में नागराज एरापत्र को अपनी पुत्री के साथ भगवान बुद्ध की शरण में जाते हुए दिखाया गया है, जो शीर्ष वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। नागराज ने जल से ऊपर सिर उठाया हुआ है। उसकी मूर्ति को गाते और नाचते हुए दिखाया गया है। इस पर दो अभिलेख भी अंकित हैं, जिनमें यह संकेत मिलता है—'नागराज एरापत्र और एरापत्र द्वारा बुद्ध का अभिनन्दन।'

भरहुत चित्रों में चक्रवाक नाग को दिखाया गया है। उसे मनुष्याकृति में झील के समीप भक्ति-मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। उसके शीर्ष पर नागफण दिखाया गया है। ईसा की प्रारंभिक शती में स्वातवादी के नागराज अपलासला को वश में करना यूनानी बौद्ध कलाकारों का प्रिय विषय रहा है। इन मूर्तियों में एक भयभीत नाग को, जो दो नागी के साथ खड़ा है, महात्मा बुद्ध मुड़कर देख रहे हैं। नाग को या तो बुद्ध के एक ओर खड़ा दिखाया गया है या जल से ऊपर उठते हुए दिखाया गया है, जिनका बुद्ध प्रधान देवता है। एक अन्य रिलीफ में पांच फणोंवाले नाग को एक साधु के साथ बातचीत करते हुए दिखाया गया है।

साँची के स्तूप पर एक स्थान पर जंगली जानवरों द्वारा, जिनमें एक नाग

भी है, पवित्र वृक्ष की पूजा करते हुए दिखाया गया है। एक चित्रांकन में नागराज कलिका को वन्दना में गौतम बुद्ध को ज्ञानप्राप्ति की भविष्यवाणी करते हुए दिखाया गया है।

एरापत्र नाग तक्षशिला से सारनाथ महात्मा बुद्ध की शरण में आया था, जिससे तक्षशिला की नागपूजा का मिश्रण या प्रभाव बौद्ध धर्म पर स्पष्ट हो जाता है। इस कथा का उत्तम रूप हमें सहरा-बहलोल के स्थान पर स्टाइन द्वारा खुदाई से प्राप्त हुआ है, जो अब तक शिविर के संग्रहालय में विद्यमान है। महात्मा बुद्ध के निर्वाण-प्राप्ति के बाद रामग्राम के स्थान पर उनके स्मृति-चिह्नों पर स्तूप का निर्माण किया गया, जिसकी रक्षा दो नाग करते दिखाए गए हैं। बौद्ध कथाओं से विदित होता है कि महात्मा बुद्ध के अवशेषों का भाग देवताओं और नागों को मिला, इसलिए इस घटना को बौद्ध धर्म में जगह-जगह स्थान मिला। महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक एवं पौराणिक घटनाओं को बौद्धकालीन मूर्तिकला में विशेष स्थान मिला है। इसलिए यह सत्य स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन और आदि नागों का वैरभाव एवं बाद में बौद्ध धर्म के प्रति भक्तिभाव बौद्धमत की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

इसी प्रकार जैनमत द्वारा प्रेरित कला एवं साहित्य में भी नागों को स्थान मिला है। जहाँ भी वर्धमान महावीर, सातवें जैन तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ तथा अन्तिम तीर्थंकर पारसनाथ की मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें से कुछ नागों का चित्रांकन भी हुआ है। कुषानकाल की मथुरा शिला पर चित्रित वर्धमान महावीर पवित्र वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। सामने खड़े सेवकों में से एक को नागों के प्रतीक नागफणों की छत्री के साथ दिखाया गया है। इसी तरह मैसूर में श्रवणबेलगोला के स्थान पर प्रसिद्ध गोमतेश्वर की विशाल मूर्ति को चारों ओर बांबियों से घेरा गया है, जिनमें से नाग निकलते दिखाए गए हैं। कुषानकाल के एक मथुरा पेनल में स्तूप की पूजा करते हुए चार आकृतियाँ हैं, जिनमें से एक नागिन की आकृतिहै।

कला में नागों और गरुड़ के मध्य शत्रुभावना भी एक लोकप्रिय विषय रहा है। इन मूर्तियों एवं चित्रों में गरुड़ के चंगुल में साँप दिखाया गया है। इलौरी के मंदिरों में शिलाखंड पर लक्ष्मी को कमल पुष्प से निकलते नागों को भेंट प्रस्तुत करते हुए दिखाया गया है। देवगढ़ मंदिर मूर्तिकला में हाथियों के राजा गजेन्द्र मोक्ष को नागों के पाश से छुड़ाते हुए भगवान विष्णु को दिखाया गया है।

दक्षिण में रामलिंगेश्वर मंदिर छोटा-सा है। सारा मंदिर ध्वस्त हो चुका है। फिर भी इसमें अब तक पूजा होती है। काकतीय कला का अनुपम उदाहरण है। इस मंदिर के मुखद्वार पर खड़ी हुई नागकन्या की मूर्ति अपूर्व सुन्दर है। इस मूर्ति में कोई भी कवि नाग कन्या को देखकर मुग्ध हुए बिना नहीं रहेगा। काले पत्थर की लगभग पाँच फुट ऊँची यह मूर्ति सौन्दर्य-सागर की उस ऊर्मि का अन्यतम

चित्रण है, जिसका नाम नारी है। नारी के हाथ में सर्प है और सिर पर सर्प है। वह सर्प पर खड़ी है। तोरणों पर अन्य कई मूर्तियाँ हैं, किन्तु नागकन्या सबसे अलग दिखाई देती है।

इसी तरह दक्षिण भारत के विमान शैली के मंदिर स्तम्भों पर शेर, हाथी के साथ-साथ नाग, नागदेवता इत्यादि भी अंकित हैं। महाबलिपुरम् में सागर किनारे तीन असाधारण मंदिर बने हुए हैं। उठे हुए शेर पिलास्टर के साथ बड़े विमान की दीवारों पर भूत, हाथी, मेढे के साथ नाग एवं नागदेवता भी अंकित हैं।

इसी जगह पल्लवकाल के वराह गुफा मंदिर में उत्तर और दक्षिण दिशा में दीवार पर नागराज या आदि शेषनाग की मानव रूप की आकृति पाँच फणों वाली निर्मित की गई है। इसी प्रकार महेशमर्दिनी गुफा मंदिर की दक्षिणी दीवार पर विष्णु अनन्तशयनम नाग पलंग पर योगनिद्रा में विलीन दिखाए गए हैं।

चौलकाल का कुम्भकोणम में नागेश्वरम मंदिर भी अपने कला-सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है।

कहते हैं महात्मा बुद्ध के अवशेष मृत्योपरान्त कबीलों के राजाओं में बाँटे गए। प्रत्येक ने उनकी स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए एक स्तूप निर्मित किया। नागों द्वारा स्तूप-पूजा अमरावती का एक प्रिय विषय रहा है। कई जगह पर प्रवेशद्वार के रक्षक पाँच फणों वाले नाग हैं। सुन्दर रूप से अंकित शिला पर स्तूप को जानवरों के रूप में नाग-रक्षा करते हुए दिखाया गया है। इस प्रकार भगवान बुद्ध के जन्म से लेकर मृत्यु तक नागों का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है।

नागार्जुन के प्रभाव में बौद्धधर्म में क्रांतिकारी परिवर्तन आए। महाराज कनिष्क के अधीन महान सभा का आयोजन हुआ था। बौद्धधर्म अनेक मतमतान्तरों में बँट गया। ऐसे ही समय नागार्जुन ने पुराने बौद्धधर्म को पुनर्जीवित करने की घोषणा की। इस महान् पैगम्बर के अनुसार जीवनकाल में साक्य मुनिगौतम बुद्ध के मुख से जो शब्द निकले वे नागों द्वारा सुनकर और लिखकर तब तक सुरक्षित रखे गए, जब तक मानवता उन्हें प्राप्त करने योग्य नहीं हो जाती। नागार्जुन ने घोषणा की, कि उन्होंने नागों से वे प्राप्त कर लिये हैं और उसे विश्व को प्रसारित करने का आदेश मिल चुका है। इसके फलस्वरूप महायान बुद्धमत का उद्भव हुआ। तब से नागों को बौद्धमत में आदरणीय स्थान प्राप्त है। अमरावती में बुद्ध के साथ नागों को भी पूज्य समझा गया।

अजन्ता में भी नागराज को सात फणों सहित बैठा दिखाया गया है और उसकी पत्नी साथ में है। अजन्ता के अनेक भीत्तिचित्रों में नाग भी चित्रांकित है, विशेषकर गुफा नम्बर २ में।

महाबलिपुरम् की बड़ी चट्टान पर नाग भी अंकित किए गए हैं। इनमें अधिक स्पष्ट है नाग और नागिन जो दो चट्टानों के बीच की दरार पर पाताल

लोक से उठते हुए-से लगते हैं। यह मानव और नाग के सम्मिश्रण की सुन्दर मूर्तिकला का नमूना है। यह कलाकृति सातवीं शताब्दी के पल्लवकाल की है।

शेषशयनम भगवान विष्णु शिल्पकला का एक लोकप्रिय विषय रहा है। महाबलिपुरम् के गुफा मंदिरों में कोरोमण्डल के तट पर सातवीं शताब्दी की शिल्पकला के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। भगवान विष्णु की तेजस्वी मूर्ति शेषनाग की कुण्डली पर सोयी दिखाई गई है। उनके शीश को शेषनाग के फणों ने घेरा
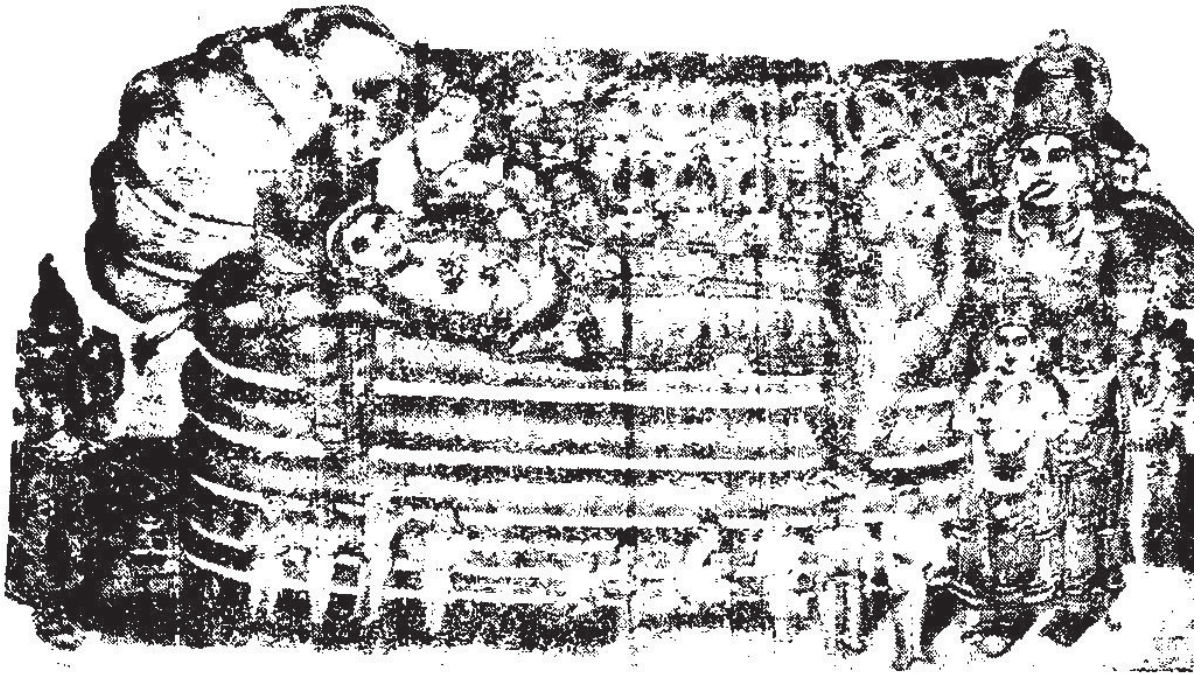
शेष-शयनम भगवान विष्णु

हुआ है। इसी प्रकार गुप्तकालीन देवगढ़ मंदिर में शेषशयी विष्णु चार बाहुओं के साथ सोए दिखाए गए हैं। लक्ष्मी को विष्णु के दायें चरण को दबाते हुए दिखाया गया हैं। भगवान विष्णु के तीसरे वाराह अवतार में शेषनागबायाँ पाँव शेषनाग पर रखे धरती को बायें कंधे पर उठाए हुए हैं। गुप्तकालीन उदयगिरि की बड़ी चट्टान शेषनाग मूर्तिकला में दिखाया गया है। इसी प्रकार बादामी और महाबलिपुरम् की चट्टानों पर उत्कीर्ण नाग मूर्तिकला भी अत्यन्त सुन्दर है।

अजन्ता में सात फणों वाले नागों के पन्द्रह मूर्तियों के कलात्मक रूप मिलते है। शायद इससे अधिक हों, जो टूट-फूट गए होंगे। आबू पर्वत के सभी जैन मन्दिरों में तथा सदरी में नाग जगह-जगह चित्रांकित मिलते हैं।

मथुरा के प्रसिद्ध मंदिर के तोशकखाना में सोने की तीन मूर्तियाँ रखी हैं, जिनमें से एक ओर हनुमान की, दूसरी ओर गरुड़ की और मध्य में सात फणों वाले नाग की रखी है, जिस पर हीरे-मोती तथा छत्र चढ़ा है। श्रीरंगम के मंदिर में प्रधान मूर्तियाँ सात फणों वाले नागों की सोने की अत्यन्त कलापूर्ण बनी हुई हैं।

प्रसिद्ध नागराज

प्राचीन भारतीय अभिलेखों, मूर्तिकला और पौराणिक साहित्य में अनेक प्रमुख नागों का उल्लेख मिलता है, जिनमें कहीं 78 और कहीं 68 नागों के नाम मिलते हैं। हरिवंशपुराण में एक जगह पर 26 दिव्य नागों और दूसरी जगह पर 18 नागों के नाम मिलते हैं। भागवत में 15 तथा वायुपुराण में 41 नागों के नाम हैं। नीलमाता में 500 नाम दिए गए हैं। इन असंख्य नागों में शेषनाग, वासुकी, तक्षक, एलापत्र, कर्कोट, शंखू, मणि, कालिया, नन्द, उपनन्द, सागर, मानसविन, अनवतापा, उत्पाला, धृतराष्ट्र, धनंजय, आर्यक, जनमेजय और दिलीप नाग प्रमुख समझे जाते हैं।

शेषनाग

संस्कृत में शेष से अभिप्राय अनन्त से है या ऐसी वस्तु जिसके लिए अन्य वस्तुएँ विद्यमान हैं। मूर्तिकला और चित्रकला में शेष अनन्तता का द्योतक है, जो सहस्रों में प्रकट हो सकता है।

शेषनाग का नाम पुराणों में अन्य नागों में सबसे पहले आदर-सहित लिया जाता है। हरिवंशपुराण में जहाँ ब्रह्मा सभी तरह के प्राणियों के लिए राजा नियुक्त करते हैं, उल्लेख है, उन्होंने वासुकी को नागों का राजा बनाया, तक्षक को साँपों का और शेष को सभी विषदन्त प्राणियों का राजा बनाया। इससे शेष-नाग की श्रेष्ठता प्रकट होती है। शेषनाग की सहायता से देव और दानवों ने मन्दरा पर्वत को मथनी बनाकर, वासुकी को रस्सी बनाकर समुद्र का मन्थन किया था। भगवान विष्णु विश्राम मुद्रा में शेषनाग की कुंडली पर सोते हैं। शेषनाग के विषय में इसी पुस्तक में विस्तृत वर्णन अन्यत्र भी उपलब्ध है। मान्यता है, कि शेषनाग अपने फणों के पटल पर लोकों को उठाता है और उसको कच्छराज सदा अपनी पीठ पर धारण करते हैं।

वासुकी

हिन्दू पुराण-कथा अनुसार वासुकी नाग को पाताल या नागलोक में नागों

का राजा माना जाता है। शेषनाग के बाद वासुकी नाग का स्थान समझा जाता है। शेषनाग चूँकि धरती को शीष पर उठाए तथा भगवान विष्णु को आराम से सोये रहने के कार्य में रत रहते हैं, इसलिए साँपों पर शासन करने का कार्य वासुकी का उत्तरदायित्व समझा जाता है। वासुकी नाग अत्यन्त शक्तिशाली और भयंकर समझा जाता है।

वासुकी नागाओं की सभा का सभापतित्व करते हैं। वासुकी अपनी बहन जड़तकारू का विवाह इस नाम से एकान्तवासी नाग के साथ इसलिए करते हैं, ताकि उन दोनों के मिलन से नाग जाति का मुक्तिदाता पैदा हो। हिमाचल प्रदेश की एक लोककथा के अनुसार देवकी का सम्बन्ध भी वासुकी नाग से जोड़ा जाता है।

महाभारत-युद्ध में अर्जुन और कर्ण के अन्तिम युद्ध में, वासुकी अर्जुन के साथ थे और अन्य कर्ण के साथ। समुद्र-मन्थन में मन्दरा पर्वत को शेषनाग उखाड़कर मथनी बनाते हैं और वासुकी रस्सी का काम देता है।

नागों की राजधानी भोगवती का राजा वासुकी को माना जाता है। जैसे शेषनाग का नाम पुराण कथा में भगवान विष्णु के साथ जोड़ा जाता है, उसी प्रकार वासुकी का सम्बन्ध भगवान शिव से जोड़ा जाता है। ऐसा समझा जाता है कि वासुकी नाग भगवान शिव के कण्ठ से लिपटे रहते हैं। जीमूतवाहन पुराणकथा में वासुकी नाग ही गरुड़ के साथ यह समझौता करता है कि वह प्रति-दिन एक नाग उसके पास भक्षण के लिए भेजेगा। कथासरितसागर में लता देश के राजा का वासुकी के आदर में एक उत्सव मनाने का वर्णन आता है। इसी तरह एक पौराणिक आख्यान अनुसार दिल्ली के लौहस्तम्भ का आधार वासुकी नाग के सिर पर रखा गया बताया जाता है, जिससे राज्य को चिर-स्थायी स्वरूप मिल सके। कहते हैं, जब एक अविश्वासी सम्राट ने लोह स्तम्भ की बुनियाद खुदवाई, तो उसका आधार वासुकी के सिर से निकले रक्त से रंजित था। फिर स्तम्भ को स्थायी रूप से ठीक तरह से टिकाया नहीं जा सका, जिससे शीघ्र ही दिल्ली के हिन्दू सम्राट पर मुसलमानों को विजय प्राप्त हुई।

भारत के हिमाचल प्रदेश और जम्मू क्षेत्र में वासुकी नाग की पूरे क्षेत्र में अब तक पूजा की जाती है। भद्रवाह, कुल्लू और चम्बा में वासुकी नाग के बहुत पुराने मन्दिर आज तक विद्यमान हैं।

तक्षक नाग

राजा जनमेजय ने जब सर्प-यज्ञ रचाया, तो उसमें तक्षक ने अपने प्राण बचाने के लिए महान संघर्ष किया। तक्षक एक विषैला और भयानक सर्प दानव है। तक्षक का उल्लेख वेदों में भी मिलता है। अथर्ववेद और अनेक सूत्रों में उसे तक्षक

विषैलथा कहा गया है। अथर्ववेद के कुछ मन्त्र तक्षक को सम्बोधित हैं। कौशिक सूत्र में गृह-रक्षा के लिए एक बलि का उल्लेख मिलता है, जिसमें अन्य देवी-देवताओं के साथ-साथ तक्षक तथा उपतक्षक के लिए भी बलि का प्रावधान है।

रामायण में रावण द्वारा भोगवती पर विजय तथा तक्षक की पत्नी के अपहरण का उल्लेख मिलता है।

नागों सम्बन्धी सबसे पुराने मन्त्रों में तक्षक का नाम भी आता है। ऐसा लगता है कि इन्द्रप्रस्थ या तक्षशिला ही तक्षक समप्रदाय का आदि गृह रहा होगा, जो धीरे-धीरे कुरुक्षेत्र की ओर फैला। मध्यप्रदेश में तक्षकेश्वर के नाम से इन्दौर के नवाली ग्राम के समीप आज भी मन्दिर में उसकी पूजा होती है।

एलापत्र नाग

एलापत्र नाग को धृतराष्ट्र नाग के नाम से भी जाना जाता है। अथर्ववेद में तक्षक नाग के साथ धृतराष्ट्र एरावत नाग का नाम भी सर्प जाति के प्रतिनिधि के रूप में वर्णित है। महाभारत में इस नाग का नाम नागों के पूर्वजों के रूप में आता है। एलापत्र नाम एरावत का प्राकृत अपभ्रंश समझा जाता है। एलापत्र का वर्णन ब्राह्मण परम्परा में नहीं, अपितु बौद्ध परम्परा में अधिक आता है। एलापत्र को नाग के रूप में इसलिए जन्म लेना पड़ा, क्योंकि पहले जन्म में उसने एल वृक्ष को जलाया था। बौद्ध कथानुसार एलापत्र नाग तक्षशिला से हिरण पार्क तक महात्मा बुद्ध के प्रति आदर प्रकट करने के लिए आया था। चीनी यात्री हुएनसांग ने एलापत्र को उन तीन नागों में से एक माना है, जिन्हें महात्मा बुद्ध की मृत्यु के बाद उनकी अस्थियों का एक भाग प्राप्त हुआ था। ऐसा समझा जाता है कि तक्षशिला के उत्तर-पश्चिम में एक पवित्र सरोवर नाग एलापत्र आज तक विद्यमान है।

कर्कोट नाग

हरिवंशपुराण में कर्कोट नाग का विशेष उल्लेख मिलता है। कर्कोट नाग का वर्णन नल-दमयन्ती की प्रणय-गाथा में भी मिलता है, जिसमें वह नल के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है, क्योंकि राजा नल ने उसे जलते वन से बचाया था। कश्मीर में तत्कालीन सम्राट ललितादित्य अपने-आप को कर्कोट नाग का वंशज मानते थे। उत्तरप्रदेश के बाँदा जिला में बराह कटड़ा के मन्दिर में आज भी उसकी पूजा होती है।

शंखू नाग

महावस्तु अनुसार बनारस का शंखू नाग, मिथिला का पदुमा, कलिंगा का

पिंगला और तक्षशिला का एलापत्र नाग प्रसिद्ध हैं। हिमाचल प्रदेश की लोकवार्ता परम्परा में शंखू नाग बहुत पुराने धनकोष का रक्षक समझा जाता है, जिस धन की प्राप्ति के लिए शंखू नाग को मनुष्य की बलि देनी पड़ती है, तभी दबा हुआ धन पात्र को मिल सकता है और रक्षक नाग उस स्थान से अदृश्य हो जाता है।

मणि नाग

मणि को मुक्ता भी कहा जाता है। मणि नाग का उल्लेख महाभारत में भी है। सभा तथा वन पर्व में मणिनाग का जिक्र आता है। वन पर्व में कहा गया है वहाँ से मणि नाग की शरण में जाने के फलस्वरूप उसे सौ गायों के दान का पुण्य प्राप्त होगा। मणि नाग तीर्थ के जल-सेवन से विषैले सर्पदंश का प्रभाव जाता रहेगा। ऐसे लगता है कि मणि नाग का स्थान मगध राज्य की प्राचीन राजधानी राजगृह रहा होगा। 1905-6 में सर जान मार्शल और डॉ० बलोच को खुदाई के फलस्वरूप नाग मूर्तियाँ प्राप्त हुईं, जिनमें नागों को नागफणों के साथ खड़ा दिखाया गया है। यह मूर्तियाँ गुप्तकाल में निर्मित हुईं।

गुग्गामल या मुण्डलीक

हिमाचल प्रदेश एवं उसके निकटवर्ती जनपदों में गुग्गा को ही मुण्डलीक के नाम से पूजा जाता है। कहते हैं, युद्ध में गुग्गा अपने शत्रु से बिना सिर के भी बहुत देर तक लड़ता रहा था। चम्बा जनपद में गुग्गा का यही प्रतीक ज्यादा लोकप्रिय है।

वीर राणा गुग्गामल चौहान सम्प्रदाय

पश्चिमी हिमाचल क्षेत्र में गुग्गा सम्प्रदाय के देवतातुल्य राणा गुग्गामल की पूजा का प्रचलन आज तक विद्यमान है। हिमाचल प्रदेश के पूर्वोत्तर भाग में गुग्गा को विशेष मान्यता प्राप्त है। सर्पदंश से बचाव के लिए लोग गुग्गा की पूजा करते हैं। गुग्गा राणा की प्रतिमा कई गाँवों में स्थापित की गई है। उनके वजीर नरसिंह और दो सहायक भजनू और रत्नू की प्रतिमाएँ गुग्गा के दोनों तरफ रखी जाती हैं। गुग्गा की प्रतिमा भूमि से उभरते घोड़े पर सवार, राजस्थानी वेशभूषा में सजाई मिलती है। ऐसी मान्यता है कि गुग्गा राणा, नीला घोड़ा, मन्त्री नरसिंह, निकट सहयोगी भजनू और रत्नू का जन्म एक ही दिन, गुरु गोरखनाथ की कृपा से हुआ था। उन्हें पाँच वीर के नाम से भी स्मरण किया जाता है।

नागों की ये मूर्तियाँ लकड़ी, पत्थर या मिट्टी से स्थानीय शिल्पकारों द्वारा निर्मित की जाती हैं। यह मूर्तियाँ किसी सौन्दर्य भावना से प्रेरित होकर नहीं,

अपितु गहन अध्यात्म भावना से प्रेरित होकर निर्मित की जाती हैं। इन मूर्तियों पर स्थानीय लोककला परम्परा की छाप रहती है। गुग्गा के मन्दिर को प्राय: गुग्गा मढ़ी या गुगेहर कहा जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुग्गा सम्प्रदाय की परम्परा हिमाचल प्रदेश में बहुत पुरानी नहीं है। इस सम्प्रदाय का विस्तार लगभग सत्रहवीं शताब्दी के आसपास राजपूत प्रभाव के साथ-साथ राजस्थान से इस पहाड़ी क्षेत्र की ओर बढ़ा, जिसका प्रभाव आज भी विशेषकर चम्बा, बिलासपुर, काँगड़ा, मंडी, सोलन, सिरमौर क्षेत्र तक विद्यमान है।

लोककवि, जो गुग्गा राणा की यशोगाथा गाते हैं, नाथ कहलाते हैं। त्रिशूल या नाग की भाँति बने तांबे या लोहे के डंडों के साथ गुग्गल धूप तथा अन्य पवित्र सामग्री सहित दल बनाकर गुग्गा कीर्तन या धार्मिक भजन गाते-नाचते। भादो मास में गुग्गा नवमी को घर-घर के सामने से गुजरते हैं, सर्पदंश से बचने के लिए लोग गुग्गा की पूजा करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भादो मास में ही राणा गुग्गा धरती में समा गए थे।

गुग्गा मल के जन्म, जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में जनता में अनेक आख्यान प्रसिद्ध हैं। राजस्थान के मारू देश (मारवाड़) क्षेत्र में बागड़ राज्य में चौहान वंशीय नरेश शान्त के सुपुत्र राजा जेबर बहुत प्रतापी थे। सन्तानाभाव के कारण वह बहुत दुखी रहते थे। सन्तान-प्राप्ति हेतु प्रार्थना करने पर गुरु गोरखनाथ ने रानी बाशल को दूसरे दिन सुबह अपनी धूनी पर आने का आदेश दिया। रानी की छोटी बहन काशल भी निसन्तान थी। अगले दिन छलपूर्वक रानी से पहले ही वह धूनी पर पहुँच गई। गुरु ने उसे दो फल दिए, जो दो पुत्र-रत्नों की प्राप्ति के सूचक थे। बाद में रानी बाशल गुरु की धूनी पर सादर उपस्थित हुई। गुरु ने दूसरी बार आने का कारण पूछा तो राजा सहित रानी बहुत हैरान हुई। गोरखनाथ ने अन्तर्दृष्टि द्वारा काशल के छल को जान लिया। उन्होंने रानी काशल को शाप दिया कि वह पुत्र का सुख न देख सकेगी। फिर भी रानी को श्रेष्ठ पुत्र रत्न-प्राप्ति का शुभाशीष दिया और भविष्यवाणी की कि रानी के गर्भ से सिद्धपुरुष जन्म लेगा। फलत: गर्भ-धारण के बाद रानी अपने पिता राय ससौरिया की रियासत दिल्ली को बैलगाड़ी द्वारा चल पड़ी। मार्ग में गाड़ी के एक बैल को सर्प ने डस लिया। उसी समय उसको अपने उदर में से आवाज आयी कि बाबा गुग्गा का ध्यान करके बैल को कच्चे सूत के धागे से बाँध। रानी ने ऐसा ही किया। तुरन्त बैल स्वस्थ हो गया।

रानी का गर्भ जब ग्यारह महीने का हो गया, तो गर्भ से आवाज आयी कि गुग्गा ननिहाल की बजाय गढ़ मारूए में जन्म लेंगे। फलत: रानी गढ़ मारूए पहुँची, जहाँ 444 के भाद्रपद की नवमी को गुग्गामल का जन्म हुआ। रानी की

छोटी बहन काशल के गर्भ से भी दो वीर पुत्र अर्जुन और सुर्जन पहले ही जन्म ले चुके थे। दोनों पुत्रों के जन्म के बाद रानी काशल की मृत्यु हो गई और उनका पालन-पोषण बड़ी रानी ने ही किया। बाशल ने सदैव उन्हें मातृ-स्नेह ही दिया। परन्तु बड़े होकर अर्जुन और सुर्जन द्वेषभाव से जब भी अवसर मिलता, गुग्गा को तंग करने की कोशिश करते। परस्पर का वैरभाव धीरे-धीरे बड़े होकर भयंकर रूप धारण कर गया।

बड़े होकर जब गुग्गामल का रिश्ता कौरू देश के राजा की सुन्दर कन्या सुरियल से हो गया, तब भी अर्जुन और सुर्जन ने निराधार अफवाहें फैलाकर लोगों को गुग्गा के विरुद्ध कर दिया। अन्ततः गुरु गोरखनाथ के आश्वासन पर ही गुग्गामल का विवाह सम्पन्न हो सका। गुग्गा और सुरियल बहुत दिनों का प्रसन्नतापूर्वक दिन व्यतीत करते रहे।

गुग्गामल के पिता की मृत्यु के बाद राज्य की बागडोर ज्येष्ठ एवं सर्वगुण-सम्पन्न गुग्गामल को सौंप दी गई। यही नहीं, गुग्गा की माँ के पिता ने भी जो निःसंतान थे, गुग्गा के शौर्य, वीरता और अन्य गुणों पर मोहित होकर अपना राज्य भी उसे ही सौंप दिया। इस बात से गुग्गामल के भाई अर्जुन और सुर्जन भी खीज गए और उसके विरुद्ध बहुत बड़े षड्यन्त्र की तैयारी करने लगे। अन्त में मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ मिलकर गुग्गा के राज्य में कई बार चढ़ाई करवाई, परन्तु हर बार मुंह की खानी पड़ी।

जब दूसरों की सहायता से सफल न हुए, तब एक दिन धोखे से गुग्गा पर घात लगाकर उन्होंने हमला कर दिया। आत्मरक्षा के लिए गुग्गा को अपने भाइयों के साथ सीधे तलवार के हाथ दिखाने पड़े, जिसमें दोनों भाई मारे गए। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर गुग्गा की माँ बहुत दुखी हुई और गुग्गा को दुख और क्रोध से भरकर बुरा-भला कहा। उसने बेटे को कभी मुँह न दिखाने के लिए कहा। गुग्गा माँ की फटकार से इतना दुखी हुआ कि वह अपना राज-पाट और अपनी प्रिय पत्नी को वहीं छोड़कर वनों में चला गया और बहुत दिनों तक तपस्या करता रहा।

अन्त में उसने राजस्थान में बीकानेर के गुग्गो माढ़ी के समीप धूनी जलाई, जहाँ बाद में उसने महासमाधि ले ली। सूचना सुनकर उसकी रानी सुरियल और माँ बहुत दुखी हुई। सुरियल ने अपनी पति-भक्ति, प्रेम तथा गुरु गोरखनाथ के प्रताप से सूक्ष्म शरीर में गुग्गा को अपने महल में आने पर बाध्य किया। वह रात को रानी के महल में दाखिल होते और प्रातःकाल अदृश्य हो जाते। एक दिन राजमाता बाशल ने सुबह-सवेरे अपनी बहु सुरियल को हार-श्रृंगार से सुसज्जित अपने शयन-कक्ष में देख लिया। उसे दुराचारी होने का संदेह हो गया। जब सुरियल को बहुत तंग और मजबूर किया गया तब उसे सारी सच्चाई बतानी पड़ी। इस

सत्यता को परखने के लिए माँ बाशल रात-भर द्वार पर खड़ी रही, सुबह जब गुग्गा द्वार से बाहर जाने लगा, तो माँ ने बाजू से पकड़कर उसे दोबारा इस दुनिया में आने का आग्रह किया। गुग्गा ने इस शर्त पर बात मान ली कि वह गुग्गा नवमी को धरती से अपने नीले घोड़े और साथियों सहित ऊपर आएगा परन्तु कोई शोर-शराबा नहीं होना चाहिए। परन्तु माँ ने सारी जगह यह बात फैला दी। हजारों की संख्या में लोग वहाँ एकत्र हो गये। जब गुग्गामल अपने नीले घोड़े पर धरती से ऊपर निकलने लगा, तो लोगों ने शोर मचाया। गुग्गा, घोड़ा और उसके साथी पत्थर बन गए।

बाद में उसी जगह लोगों ने मंदिर बना दिया और प्रतिवर्ष गुग्गा नवमी के दिन लोग आज तक उस पवित्र स्थान पर एकत्र होकर गुग्गा की विधिवत पूजा-अर्चना करते हैं। कहते हैं, इस मंदिर की मिट्टी में भी इतना प्रभाव है कि वह

सर्पदंश के प्रभाव को मिटा सकती है। गुग्गा की शक्ति का प्रभाव इतना है कि मुस्लिम भी उसे पीर मानकर आदर से देखते हैं। उसे 'गुग्गा पीर' के नाम से याद करते हैं।

प्रत्येक गुग्गा मन्दिर में भाद्रपद मास की नवम तिथि को गुग्गा का जन्मोत्सव

मनाया जाता है। गीत गाये जाते हैं। रात को जगराता होता है। इसी दिन मंदिर का पुराना झंडा उतारकर नया झण्डा चढ़ाया जाता है। झण्डे की ऊँचाई 52 फुट रखते हैं। गुग्गा पशुओं के पालक के रूप में भी प्रसिद्ध हैं।

हिमाचल प्रदेश के ऊना जिला में गूगा के मंदिर चकसराय, कडप, रूपोह, टकोली, मेडों, नहरो, पतेहड़, मंजाल, ईसपुर, कोहाड़ाकुल, ढूहच, डिठवाड़ा, गगरोला सलोह, बढ़ेडा, मिण्डला, कसनेट इत्यादि गांव में बने हैं।

पंजाब में गूगा पीर की पूजा भादो मास में होती है। पंजाब के विभिन्न गाँवों में गूगा मढ़ी में नाग देवता की पूजा होती है, ताकि जानवर और परिवार साँपसे सुरक्षित रहें। जिला लुधियाना में चपर गाँव है, जो मंडी अहमदगढ़ रेलवे स्टेशन से, लुधियाना-जाखल लाइन पर दो किलोमीटर के फासले पर स्थित है। परन्तु लुधियाना से यह फासला 40 कि० मी० है। इस गाँव का गूगा पीर मेला अन्य गांव की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है। इसके लिए एक स्थानीय कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि एक बार एक जाट स्त्री अपने छोटे बच्चे को खेत के एक कोने में रखकर रुई उठा रही थी। एक यात्री ने बच्चे के समीप एक फणीयर साँप देखकर उसे मार दिया। कहते हैं, बच्चा भी साँप के साथ मर गया। उसी रात, उसकी दुखी माँ को स्वप्न में वह बच्चा मिला, जिसने माँ से यह कहा कि उसे भी उसी स्थान पर दबा दिया जाए। उसने उसे गूगा पीर की पूजा करने को कहा, ताकि उसके दूसरा पुत्र पैदा हो।

एक बार नाभा के राजा ने इसी स्थान पर गूगा पीर से बच्चे के लिए प्रार्थना की। कहते हैं, उनके आशीर्वाद से उनके पुत्र पैदा हो गया। इसी खुशी में धन्यवाद करने भेंट-सहित वह मढ़ी पर आया, तो उसे पता लगा कि मढ़ी सैलाब में नष्ट हो गई है। पुजारी की प्रार्थना से राजा ने उस स्थान पर पक्की मढ़ी बनवा दी। तब से पंजाब-भर के लोग यहाँ आकर अपने श्रद्धा-पुष्प चढ़ाते हैं।

इसी तरह राणा गुग्गामल की पूजा-परम्परा राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश इत्यादि में भी प्रचलित है।

इतिहास में नागराज

गुजरात के शासक मुहम्मदशाह ने अपने उत्तराधिकारी राजकुमार को बचपन से नागविष खिलाकर इसलिए बड़ा किया ताकि उसे कोई विष देकर मार न सके। प्रतिदिन उसे विष की कुछ मात्रा दी जाती थी, जो धीरे-धीरे बढ़ा दी गई। बाद में वह इतना जहरीला बन गया कि जब सुलतान किसी को मारना चाहता, तो अपराधी को उसके सामने नग्न प्रस्तुत किया जाता, वह कुछ पत्ते चबाकर उस पर फेंकता, जिससे कुछ देर बाद उसकी मृत्यु हो जाती। वह इतना जहरीला बन गया था कि कोई उसके कपड़े तक स्पर्श नहीं कर सकता था। जैसे अफीमची अफीम खाना नहीं छोड़ सकता, उसी तरह वह भी कभी नागविष खाना नहीं छोड़ सका। पाकिस्तान के बलोचिस्तान जिले के लोग अबतक विश्वास करते हैं, कि नादिरशाह का साँस इतना जहरीला था कि वे दो लड़कियाँ, जो उसके दाँत साफ करती थीं, बेहोश हो गईं और इनमें से एक बाद में मर गई।

सर टामस रो मुगल सम्राट जहाँगीर के समय में पहले-पहल इंग्लैंड का राजदूत बनकर भारत आया था। उसके साथियों में एक ठेरी नामक अंग्रेज भी था। उसने अपने संस्मरणों में निम्नलिखित वर्णन लिखा है—

मुगल (जहाँगीर) के सम्मुख एक और अभियुक्त पेश किया गया, जिसने अपनी माँ की हत्या की थी। ऐसे जघन्य अपराध के लिए कैसे मृत्युदण्ड दिया जाय, इस पर बादशाह ने काफी विचार किया और अन्त में हुक्म दिया कि इसे साँपों से कटवाकर मार दिया जाए। ऐसा ही किया भी गया। भारत में कुछ लोग सपेरे होते हैं, जो तरह-तरह के खेल दिखाने के लिए साँप पालते हैं। ऐसा ही एक सपेरा बुलाया गया, जो कि उसअ पराधी को साँप से कटवाये। अपराधी बिलकुल नंगा जरा-सी लँगोटी पहने काँपता हुआ खड़ा था। सपेरे ने पहले साँप को छेड़कर उत्तेजित किया और फिर एकाएक अपराधी की जाँघ पर छोड़ दिया। साँप तुरन्त जाँघ में लिपट गया। थोड़ा-सा मुँह ऊपर करके उसने बड़े जोर से डसा, यहाँ तक कि खून टपकने लगा। एक दूसरा साँप दूसरी जाँघ पर छोड़ा गया। उसने भी इसी प्रकार डसा। पन्द्रह मिनट तक वह अपराधी अपने पैरों पर खड़ा रहा, पर उसने जताया कि उसके सारे अंग-प्रत्यंगों में आग-सी जल रही है। उससे उसे

असह्य वेदना हो रही है। साँप पन्द्रह मिनट से पहले उस पर से हटा लिये गये। पन्द्रह मिनट बाद वह गिर पड़ा। उसका शरीर सूजने लगा। साँप हटाये जाने के आधा घण्टे बाद वह पूर्णतया निर्जीव हो गया।

साँप कानूनी तौर पर दूसरे के प्राण लेने के लिए प्रयुक्त किया जाता था, यह इस बात का एक उदाहरण है। गैरकानूनी तौर पर दूसरे आदमी की हत्या के लिए साँप चिरकाल से प्रयोग में आता रहा है और अब भी करने वाले इसका प्रयोग करते हैं। प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्रों में दूसरे के मकान में साँप या ऐसा ही कोई दूसरा प्राणी फेंकने को हिंसा कहा गया है और इसके लिए कठोर दण्ड, फेंकने वाला स्वयं साँप को हाथ से उठाकर मकान से बाहर फेंके, की व्यवस्था की गई।

सन् 1969 में बंगाल के पूर्णिया जिले में दो सपेरों को इस अपराध में सजा दी गई कि उन्होंने साँप से कटवाकर तीन आदमियों के प्राण ले लिये। यह सिद्ध हुआ कि उन सपेरों ने चार आदमियों को यह आश्वासन देकर कि साँप के काट लेने पर भी हम आदमी को बचा सकते हैं, उन्हें साँप से कटवाने के लिए राजी कर दिया। एक करैत साँप से उन चारों को कटवाया गया, जिनमें से केवल एक मुश्किल से बचा। इस अपराध में सपेरों का उद्देश्य क्या था, वह पता नहीं चल सका।

राजनीतिक नेताओं की हत्या के उद्देश्य से भी कई बार साँप का प्रयोग किया जाता है। अनेक वर्ष पूर्व एक बार पंडित नेहरू के बिस्तर पर भी साँप पाया गया था। पर वह साँप समय रहते देख लिया गया और पं० नेहरू का अहित करने से पूर्व ही उसे समाप्त कर दिया गया।

मिस्र की साम्राज्ञी क्लियोपेट्रा अपने समय की संसार में अधिक सुन्दरी एवं विदुषी नारी थी। उसने उस समय रोमन साम्राज्य के प्रमुख सेनापति जूलियस सीज़र का हृदय अपने सौन्दर्य से जीता था। जूलियस सीज़र की हत्या के बाद उसका मित्र मार्क एंटनी क्लियोपेट्रा के लावण्य का शिकार बना। इस अपूर्व प्रतिभा एवं सौदर्यशालिनी रानी की कथा समृद्धि तथा विलास की कहानियों में सर्वदा प्रमुख रहेगी।

एंटनी ने क्लियोपेट्रा को रोमन साम्राज्य के वे प्रदेश दे दिए थे, जिन्हें देना उसके अधिकार से बाहर था। इसके अतिरिक्त क्लियोपेट्रा के साथ विलास में मग्न रहकर उसने राजकार्यों की ऐसी उपेक्षा प्रारम्भ की, जिसे रोम की सत्ता नहीं सह सकती थी। आखिर हिसाब का भुगतान करने के लिए आक्टेवियस को परास्त करके सारी पृथ्वी का स्वामी बन बैठा। पर वह हार गया और मारा गया। क्लियोपेट्रा एक समाधि में जाकर छिप गई। आक्टेवियस क्लियोपेट्रा को कैद करके ले जाना चाहता था, पर क्लियोपेट्रा इस अपमान को सहने को

तैयार नहीं थी। उसने दासियों की सहायता से अंजीरों की एक टोकरी में छिपाकर कोबरा साँप मँगवाया। उसके बाद उसने खूब उत्साह और उल्लास के साथ अन्तिम शृंगार किया और फिर उस साँप को गले से लगाकर शैया पर लेट गई। कोबरा के विष ने तीव्रता से अपना प्रभाव किया और क्लियोपेट्रा चिर-निद्रा में सो गई।

इतना ही नहीं, पुराने लेखकों ने युद्धों में भी साँपों के उपयोग की बात लिखी है। कार्थेज के प्रसिद्ध सेनापति हनीबाल और एटियोकस ने रोमनों को हराने के लिए उनकी नौकाओं पर मिट्टी की हड्डियाँ फेंकी थीं, जिनके अन्दर जहरीले साँप मारे हुए थे। इससे पहले कि ये साँप मारे जा सकें, इन साँपों ने बहुतों को डसकर मार दिया।

प्रसिद्ध यूनानी वीर सिकन्दर महान ने जब भारत पर आक्रमण किया, तब उसे पहाड़ी मार्ग में अनेक गुफाओं में बड़े-बड़े नाग सुरक्षित देखने को मिले, जिन्हें भारतीय जनता दिव्य समझकर पूजती थी। अनेक भारतीयों ने सिकन्दर से उन्हें न छेड़ने की प्रार्थना की, जिसे उसने स्वीकार भी किया। परन्तु जब उसकी विशाल सेना पहाड़ियों से होकर गुजर रही थी, तो अनेक नाग सेना के कोलाहल सुनकर फुंकारते हुए बाहर निकले, जिन्हें देखकर सैनिक घबरा गये। एक क्रुद्ध नाग ने जो 70 फुट लम्बा था, इतनी भयानक फुंकार मारी कि सारी यूनानी सेना में खलबली मच गई। सेनापति इलियात तो, कहते हैं, मूच्छित ही हो गया। कहते हैं इस नाग की आँखें यूनानी सिपाहियों की ढाल के बराबर थीं। पर बाद में सिकन्दर ने बड़े-बड़े दर्पण रखकर उन्हें बड़ी कठिनाई से नष्ट किया। एक विदेशी विद्वान एलियन मैकरिडल ने भी लिखा है—जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया, तो उसने अन्य जानवरों के अतिरिक्त नाग देवता भी पूजा के लिए रखा देखा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि चौथी शताब्दी से कहीं पहले भारत में नागपूजा परम्परा प्रचलित थी। सिकन्दर के साथ आए एक सैन्य अधिकारी के अनुसार अभिसार के राजा के पास दो नाग थे, जिनमें से एक 80 और दूसरा 140 क्यूबिट लम्बा था। अन्य यूनानी लेखकों ने भी लिखा है कि भारतीय लोग नागों को पकड़कर उन्हें पालते और पूजते थे।

एक अन्य कथा के अनुसार मकदूनिया के सम्राट फिलिप के राज्यकाल में आरमोनिया के दो पहाड़ों के बीच का मार्ग इतना जहरीला बन गया था कि कोई भी उसे जीवित पार नहीं कर सकता था। इस पर सुकरात ने सम्राट फिलिप को एक युक्ति सुझाई। उसने पहाड़ के बराबर एक ऊँची मीनार बनवायी, जिसकी दीवारों पर दर्पण लगवाया। इस दर्पण में दो बड़े-बड़े फुंकार मारते नाग नजर आए, जो वायु को जहरीला बना रहे थे। वायुबन्द कवच पहनाकर सैनिकों द्वारा उन दो नागों को मारा गया।

वर्तमान भारत में नाग पूजा परम्परा

अभी तक के विवरण से एक बात स्पष्ट रूप से हमारे सामने उभरकर आयी है कि भारतीय मिथिकों में नागों की भी प्रमुख भूमिका रही है। नागपूजा न केवल जारी रही अपितु लोकविश्वासों पर भी इसका बहुत प्रभाव पड़ा, जिस पर हमें तनिक भी संदेह नहीं रहता। भारतीय संस्कृति, धर्म और जनजीवन में तो नाग और नागपूजा की बहुत गहरी पैठ है।

भारत में उपलब्ध कोबरा साँप को ही नाग के रूप में भारत के अनेक भागों में आज तक पूजा जाता रहा है। वास्तव में भारतीय मिथक तथा भारतीय लोकवार्ता के नाग साधारण साँप नहीं हैं परन्तु व्यवहार रूप में कोबरा को ही दिव्य रूप का प्रतीक बनाकर पूजा जाता है।

कहते हैं 1766 में मेजर मोटे सांभलपुर गया, जहाँ आदिकाल से एक महान नाग की पूजा परम्परा चालू थी। हर सातवें दिन वह नाग गुफा से बाहर आता था और भक्तों द्वारा भेंट चढ़ाई गई बकरी स्वीकार करता था। बकरी हड़प करने के बाद गुफा के समीप बनी नहर में स्नान करता था। जब मेजर किटोए 1836 में साँभलपुर गया तो उसने देखा कि वह नाग उस समय भी जीवित था।

साँप के विष के घातक होने के बारे में लोकविश्वासों में यहाँ तक मान्यता है, कि बड़े नाग प्राणियों को दृष्टि डालकर या फुंकार मारकर भी हानि पहुँचा सकते हैं। जब कालका-शिमला सड़क निर्माणाधीन थी तो सोलन के समीप बड़ोग में भूमि तले सुरंग की खुदाई करते समय एक अत्यन्त भयंकर नाग भूमि से निकला जिसकी फुंकार से अनेक मजदूर काल-कवलित हो गए। अन्त में सैनिक तोपें दागकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए।

भारतीय लोक परम्परा और मिथकों में नाग या कुछ अच्छे सर्पों को कृतज्ञ प्राणी के रूप में भी स्मरण किया जाता है, जो अपने पर किए गए अहसान को कभी नहीं भुलाता। ऐसी अनेक पौराणिक कथायें मिल जायेंगी। नल और दमयन्ती की कथा में एक बार जब राजा नल किसी कारण दमयन्ती को अकेला छोड़कर एक घने जंगल से गुजर रहे थे, उन्हें बचाओ-बचाओ की ध्वनि सुनाई दी। देखा

तो एक नाग देवता आग की लपटों से घिरे हुए थे। नल ने साहस बटोरकर नाग को बचा लिया। नाग ने धन्यवाद करते हुए नल को कहा कि मैं तुम्हारी दया का बदला चुकाना चाहता हूँ, जरा दस कदम चलकर दिखाओ। जब नल दस कदम चला, तो नागराज ने उसे दंश मारा। इस पर नल ने नागदेवता से पूछा, "यह आपने क्या कर दिया, नाग देवता ?" इस पर नाग ने उत्तर दिया, "तुम्हारा रूप बदल दिया ताकि कोई तुम्हें पहचान न सके। आज से तुम बाहुक हुए। अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण पासा खेलने में अद्वितीय हैं। यह खेल सीखना है तो उनके पास जाओ। यह वस्त्र लो। इसे पहनते ही तुम्हें फिर से अपना असली रूप मिल जाएगा।" इस घटना से नल को पुनः दमयन्ती को प्राप्त करने में पूरी सहायता मिली।

भारतीय लोक परम्परा के अनुसार श्रेष्ठ साँपों या नागों के सिर पर एक बहुमूल्य मणि भी होती है, जिसे नाग इच्छानुसार सिर से बाहर निकालकर रात के समय उसकी रोशनी में भोजन ढूंढ़ता है। प्राचीन कवियों ने नागमणि का जगह-जगह उल्लेख किया है। इन कथाओं के अनुसार नाग जिस पर अति प्रसन्न हो जाए, उन्हें मणि दे देता है।

नागों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने हेतु भारत में नाग पंचमी, अनंत चौदश और गूगानवमी जैसे त्योहार मनाने की परम्परा आज भी विद्यमान है। आशीर्वाद के समय हाथ फैलाकर हथेली मस्तिष्क पर रखने की भारतीय परम्परा के मूल में शेषनाग के आशीर्वाद की ही कामना है। लम्बा हाथ शेषनाग का तथा पाँच उंगलियाँ उसके पाँच मस्तिष्क की प्रतीक समझी जाती हैं। ज्ञान के प्रतीक यज्ञोपवीत में भी एक सूत्र को नाग तन्तु कहा जाता है।

उत्तरी भारत में ईस्वी सम्वत् से भी कहीं पहले शक्तिशाली नाग राजा शासन करते थे। इनमें भारशिवि नाग, मथुरा के नाग शासक, पद्मावती और विदिशा क्षेत्र के शासक नागवंशी नागपूजक थे और इसी प्रभाव में उन्होंने मुद्रा भी चलाई, जिसके अवशेष आज भी उपलब्ध हैं। भारशिवि नाग और बाकाटका के मध्य विवाह-सम्बन्ध को बहुत महत्त्व दिया गया, जिसका प्रमाण बाकाटका अभिलेखों से मिलता है। डॉ० अललेकर के अनुसार भावनाग का विवाह राजकुमारी रुद्रसेन बाकाटका से हुआ। पद्मावती राज्य का शासक नागराज था, यद्यपि इस वंश के शासकों ने अपनी मुद्राओं में कोई नाग प्रतीक अंकित नहीं किए। उन्होंने शायद ऐसा इस विचार से किया होगा ताकि उनके विशाल राज्य में विभिन्न मतावलम्बी उन पर पक्षपात का इल्जाम न लगाएं।

इसी समय वैष्णव धर्म तथा शैव धर्म का प्रभाव-क्षेत्र भी बहुत बढ़ गया था। भारशिवि और बाकाटक भी शैव मतावलम्बी बन गए थे। जिन नागों ने नाग-

मुद्राएं चलाईं, उनमें स्कंद नाग, वृहस्पति नाग, देवनाग, प्रभाकर नाग और गणपति नाग के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी मुद्राओं में बैल, त्रिशूल, चक्र और मोर के चिह्न तो हैं, परन्तु नाग चिह्न नहीं हैं।

परन्तु ऐसे भी शासक इसी काल में थे, जिन्होंने अपनी मुद्राओं पर नाग-चिह्न अंकित करवाये। इनमें नाग चिह्नों को मुद्राओं के दूसरी ओर अंकित किया गया था। इनमें अयोध्या के शासक विशाख देव, धनदेव और नारदत्त (दूसरी ईस्वी) की मुद्राओं का उल्लेख किया जा सकता है। इस समय की नाग मुद्राओं में बैल की आकृति भी अंकित मिली है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि नागमत और शैवमत में आरंभ से ही गहरा सम्बन्ध रहा है। शैवमत का नागमत से सम्बन्ध 4500 से भी कहीं पुराना लगता है। सिन्धु सभ्यता के समय की मुहर पर दो भक्तों और दो नागों की आकृतियाँ खुदी हुई हैं। उन भक्तों का इष्टदेव योगमुद्रा में विराजमान है, जो स्पष्टतः भगवान शिव की आकृति हो सकती है।
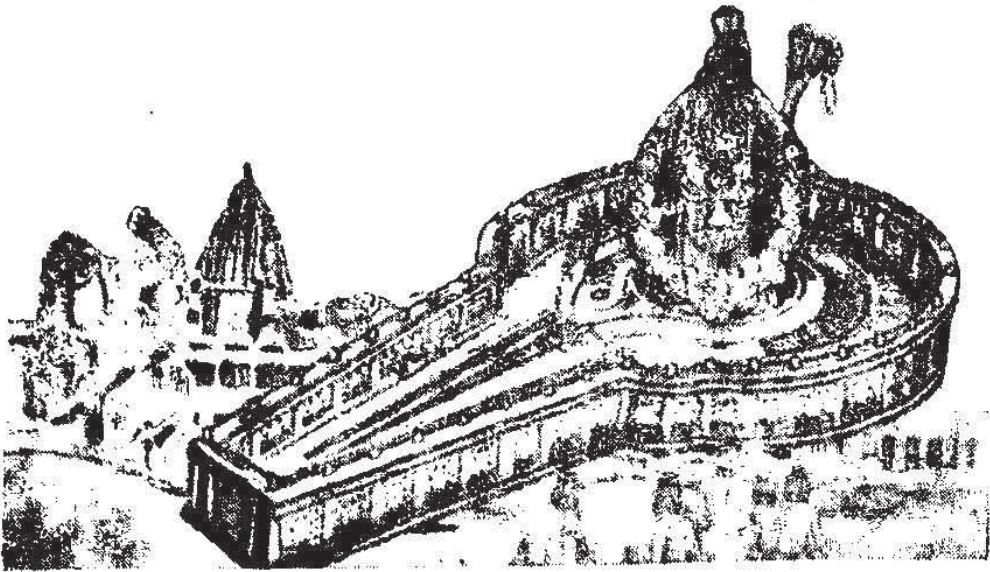
नागों का सम्बन्ध शिव से जोड़ने का एक कारण सम्भवतः उनमें स्वास्थ्य-वर्धक शक्ति का अस्तित्व है। जिस प्रकार शिव ने संसार को विष की ज्वाला से बचाने के लिए स्वयं विष पी लिया, उसी प्रकार नाग लोग वायु में फैले विष को ग्रहण कर संसार को विष के प्रसार से बचाते हैं। वैदिक साहित्य में भगवान शिव को 'संसार रोग हरमोषधम' कहा गया है। फर्गुसन के अनुसार मानव इतिहास में जहां भी हमें नागों का परिचय मिलता है, अध्यात्म रूप में वे

सिनाई के रेगिस्तान में, ऐसी-डोरस के वृक्षों में या सरमेशिया की झोंपड़ियों में—सभी जगह प्रायः उन्हें स्वास्थ्य एवं भाग्य का प्रतीक माना गया है।

कौशाम्बी, यौधेय एवं मालवा क्षेत्र में प्राचीन काल में नाग सम्प्रदाय का प्रभाव रहा है। उस क्षेत्र में प्राप्त मुद्राओं में तथा उत्तर-मौर्य काल में तक्षशिला से प्राप्त मुद्राओं में नाग प्रतीक मिले हैं। इस से नागों को भारतीय संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने की झलक मिलती है।

उत्तरप्रदेश के चमोली जनपद के मुख्यालय गोपेश्वर मन्दिर की दीवार और त्रिशूल पर गणपति नाग के राज्यकाल से दूसरे वर्ष का उल्लेख उत्कीर्ण है। तीन पंक्ति का यह लेख गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में है और अभी तक प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री में नागकुल के बारे में प्रमुख लेख है। इस लेख के अनुसार गणपतिनाग को स्कन्दनाग का प्रपौत्र, विभुनाग का पौत्र और अशनाग का पुत्र कहा गया है। गोपेश्वर मन्दिर का निर्माण गणपति नाग द्वारा किया गया बताया गया है। एक समय कश्मीर से गढ़वाल तक समस्त हिमाचल पर नाग राजाओं का प्रभुत्व था।

गोपेश्वर मंदिर की दीवारों पर चारों ओर विधि फण वाले नाग तथा नाग की आकृति के मुकुट पहने मानव का मुख बनाया गया है। प्रवेशद्वार के ऊपर हाथ में नाग पकड़े नतर्क मुद्रा में शिव की मूर्ति है।

आधुनिक मध्यप्रदेश के बेसनगर नामक स्थान पर प्राचीन काल में विदिशा नाम की प्रसिद्ध नगरी थी जो नागवंश के शासनकाल में कुछ वर्षों तक भारत की राजधानी भी रहा। बेसनगर की खुदाई में प्रसिद्ध इतिहासकार भण्डारकर को गणपति नाग और भीमनाग के तांबे के पाँच सिक्के मिले थे। इसी तरह ग्वालियर के नजदीक पदमपाया (प्राचीन पदमावती) से भवनाग, भीमनाग, बसुनाग, स्कन्दनाग, बृहस्पतिनाग, व्याघ्रनाग, देवनाग, प्रभाकर नाग आदि के सिक्कों के साथ गणपति नाग के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। प्रसिद्ध पुराविद् काशीप्रसाद जायसवाल ने गणपतिनाग के आठ प्रकार के सिक्कों का उल्लेख किया है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में नागदत्त, गणपतिनाग, नागसेन जैसे अनेक राजाओं का उल्लेख मिलता है। बाकटाक नरेश रुद्रसेन को भारशिवि के महाराज भावनाग का दौहित्र माना गया है। भावनाग के सिक्के पद्मावती और कौशाम्बी की खुदाई में मिले हैं।

बोधगया के तेरहवीं सदी के एक अभिलेख में कवि भजनुनन्दी ने अपने पिता को जीवनाग और अपने वंश को नन्दी वंश कहा है। इससे यह स्पष्ट है कि नन्दी वायु पुराण में विदिशा के राजा शेष, भोगी, चन्दाशा, भूतिनन्दी, मधुनन्दी और नन्दियश को नागकुल में उत्पन्न और वृषान कहा गया है।

बाकाटक लेखों में चन्द्रगुप्त द्वितीय की रानी कुबेरनागा को धारणा गोत्र

और नागकुल में उत्पन्न कहा गया है। नागों के आठ कुल होने से प्राचीन साहित्य में गणना के अवसर पर नाग शब्द के प्रयोग का अर्थ था—आठ की गिनती। ऐसा प्रतीत होता है कि 230 में 355 ई० का समय भारत में नाग प्रभुत्व का समय माना जा सकता है। कुषाण, नाग और गुप्त सत्ताएं क्रमशः आसीन हुईं। पुराणों के अनुसार पद्मावती में नागों ने नौ और मथुरा में सात पीढ़ी तक शासन किया था।

गढ़वाल की एक लोक-परम्परा अनुसार कभी नाग अलकनन्दा की वादी में रहते थे। आज तक शेषनाग की पूजा पंडुकेश्वर के स्थान पर भेखलनाग, रतगांव पर तलोरनाग तलोर पर, भरपुर नाग भरगांव पर लोहांदी नाग नीतिवादी में जेहलम के स्थान पर और नागपुर में पुष्कर-नाग की पूजा होती है।

गंगा के मैदान में नाग पूजा न केवल ग्रामीण क्षेत्र में बल्कि नगर में भी होती है। इलाहाबाद के दारागंज में वासुकी नाग का मंदिर प्रसिद्ध है, जहाँ प्रतिवर्ष नागपंचमी के दिन मेला लगता है।

वाराणसी में नागकुंबा के स्थान पर सीढ़ियों के साथ दीवार पर एक तरफ तीन साँप बनाए गए हैं और फर्श पर महादेव का पाषाण प्रतीक है, जिस पर साँप लिपटा हुआ दिखाया गया है। इस कुएँ पर लोग वर्ष में एक बार श्रावण मास के 24वें एवं 25वें दिन पूजा करने आते हैं। पहले दिन औरतें आती हैं और दूसरे दिन पुरुष। वे नाग देवता तथा कुएँ को बलि चढ़ाते हैं।

बिहार में कृषक लोग नाग-पूजा में विश्वास करते हैं। नागपंचमी के दिन नागपूजा की जाती है। नागमंदिरों में लोग दूध, धूप और मिष्टान्न भेंट करते हैं। यही नहीं, घरों में नागों के चित्र बनाकर पूजे जाते हैं। नागपंचमी के दिन लड़कियाँ नागों के पुतले या गुड़ियां नदियों या तालाबों में बहा देती हैं और लड़के लम्बी लाठियों से इन्हें मारते हैं। औरतें शेषनाग की पूजा करती हैं और घरों के चारों ओर गोबर की लकीर साँपों को दूर रखने के लिए खींचती हैं। बिहार में पटना जिला के नालन्दा क्षेत्र में अनेक नागों की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। इसी स्थान पर एक चतुर्भुजी नागफण वाली पाषाण नारी प्रतिमा मिली है।

तमिलनाडु में आदि शेषनाग की पूजा अनन्त शैया के रूप में की जाती है। नागपंचमी के बाद पैदा सभी बच्चों के नाम प्रायः नागराज या नागमणि रखे जाते हैं।

भारत के पश्चिमी-क्षेत्र में नागपूजा आज भी विद्यमान है, भले ही नाग सम्प्रदाय का प्रभाव-क्षेत्र घट गया हो। काठियावाड़ आज तक नाग सम्प्रदाय का केन्द्र चला आता है। वहाँ वासुकी नाग और उसके भाई बन्दूक के मन्दिर में नागों में श्रद्धा रखने वाले लोग प्रतिदिन आते हैं। एक दन्तकथा

के अनुसार इन दोनों भाइयों ने मिलकर भीमासुर को मारकर जनता को उसकी निर्दयता से बचाया था। इसलिए नाग देवता को जनता के कष्टों का परित्राता समझकर पूज्य समझा जाता है।

इसी तरह वासुकी नाग का मन्दिर थान में है। काठियावाड़ में अन्य जगहों पर प्रतीक नागमन्दिर तलसाना में और देवानिक चरमालिया नाग का मन्दिर चूड़ा क्षेत्र में चोकरी ग्राम में है। गुजरात का नागमन्दिर उत्तरी भाग में धैमा ग्राम में प्रसिद्ध है। इस नाग मन्दिर में भारत के सभी भाग से तीर्थयात्री आकर अपनी मनौतियाँ मनाते हैं।

गुजरात के उत्तर में चमत्कारपुर के समीप एक झील, जो सारस्वत हृदय के नाम से प्रसिद्ध है, कहते हैं ब्रह्मा ने इसे नागों को रहने के लिए दिया था। चमत्कारपुर के ब्राह्मणों को नागों ने बहुत कष्ट दिया। एक बाल विधवा भट्टिका को नागलोक भगाकर ले गए। ब्राह्मणों ने अन्त में भगवान आशुतोष से नागार मन्त्र प्राप्त किया, जिसके द्वारा वे नागों को पराजित कर सके। इस प्रकार से बादनागर में नाग और ब्राह्मण शान्ति से रहने लगे।

पैथान नाग औरंगाबाद से 28 मील की दूरी पर गोदावरी नदी के दाहिने तट पर स्थित है, जो कभी सातवाहन वंशीय राजाओं की राजधानी भी रहा है। यही सातवाहन वंश आन्ध्र या आंध्रभृत्य के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। इस सातवाहन वंश का सबसे प्रतापी राजा शालीवाहन हुआ, जिसने शक सम्वत् प्रारम्भ किया। पौराणिक कथानुसार शालिवाहन ब्राह्मण कन्या का पुत्र था, जो अपने दो भाइयों के साथ पैथान नगर में रहने लगी थी। कहते हैं, एक बार वह गोदावरी नदी में स्नान करने गई, शेषनाग उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गए। शेषनाग और ब्राह्मण कन्या के पारस्परिक प्रेम का परिणाम शालिवाहन था, जो बाद में एक चमत्कारी वीर राजा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भारतीय लोक-परम्परा में शालिवाहन को विशेष स्थान प्राप्त है।

कर्नाटक के प्रसिद्ध ऐतिहासिक चित्तल दुर्ग के प्रवेशद्वार पर सात फणों वाले नाग की सुन्दर प्रतिमा के दर्शन होते हैं।

लक्ष्य द्वीप के मुस्लिम लोग भी उबैदुला को अपना मसीहा और नागों को भगाने वाला मानते हैं। सन्त पैट्रिक ने साँपों को भगाने के लिए आयरलैंड में जो भूमिका अदा की, वही उबैदुला ने लक्ष्यद्वीप में की, जिसका स्पष्ट अभिप्राय यह भी है कि कभी उस द्वीपसमूह में नाग-पूजा-परम्परा प्रचलित थी।

महाराष्ट्र में बत्तीस शिराला में नाग पंचमी

पूना के दक्षिण में लगभग 200 किलोमीटर की दूरी पर तोरना नदी के किनारे बसा बत्तीस शिराला स्थित है। यहाँ विचित्र तथा रोचक रूप में

नाग पंचमी के दिन नागपूजा होती है। यहाँ के मकान खपरैलों की छत वाले तथा कच्चे हैं। यहाँ एक नागदेवता का मन्दिर भी है।

नागपंचमी हिन्दुओं का त्योहार है, जिसका सम्बन्ध प्राचीन काल से लेकर अब तक नागपूजा से जुड़ा है। आज भी भारत के विभिन्न भागों में इसे प्राचीन रीति के साथ मनाया जाता है।

वर्षा ऋतु में साँप वर्षा के कारण अपनी बाम्बी से निकलकर लोगों के घरों में घुस जाते हैं। जुलाई-अगस्त में शिराला में नागपंचमी मनाई जाती है। नागपंचमी के दिन नागपूजा की प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लोककथाएं भी प्रचलित हैं।

एक गौड़ ब्राह्मण को नागपंचमी के महत्त्व का पता नहीं था। उसे यह मालूम नहीं था कि नागपंचमी के दिन हल चलाना, खोदना, उठाना और फूल तोड़ना वर्जित है। उस दिन भी प्रतिदिन की भाँति उसने हल चलाया। उसके खेत में एक नागिन अपने छोटे नागों सहित बाम्बी में रहती थी। नागिन कहीं बाहर गई हुई थी। नागिनी के सारे बच्चे अनजाने में ब्राह्मण के हल से कुचले गये। नागिन ने जब अपने बच्चों को मृत पाया, वह मारने वाले की खोज में गाँव की ओर दौड़ पड़ी। ब्राह्मण के मकान के बाहर मृत साँपों वाला हल पड़ा था। सर्पनी चुपचाप मकान में घुसी और परिवार के सभी सदस्यों को बारी-बारी दंश मारा। उसे यह भी पता लगा कि ब्राह्मण की एक विवाहित कन्या गाँव के समीप रहती है, वह उसकी खोज में उस गाँव में भी गई। परन्तु वह लड़की नागपूजा करती थी। वह उस दिन उस समय नागराज की प्रतिमा के सामने पूजा कर रही थी। यह देखकर सर्पिनी ने अपना इरादा बदल दिया। उसने प्रसन्न होकर बाह्मण कन्या को कहा—तुम्हारे पिता ने आज मेरे बच्चों को मार दिया है, इसलिए मैंने तुम्हारे पिता के सारे परिवार को मार दिया है। अब तुम्हें मारने आयी हूँ। परन्तु तुम्हारी नाग-भक्ति देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ।

यह सुनकर बाह्मण कन्या ने पूछा कि कैसे उसके पितृ-परिवार के सदस्य पुनर्जीवित हो सकते हैं? नागिन ने कुछ अमृत बूंदें मृत शरीरों पर छिड़कने के लिए उसे दीं, जिससे वे पुनः जीवित हो उठे। उसने यह घटना अपने पिता को सुनाई, तब से गाँववालों को नागपंचमी का महत्त्व मालूम हुआ। उस दिन से शिराला के लोग नागपंचमी मनाने लगे।

दूसरी कथा का सम्बन्ध गुरु गोरखनाथ से जोड़ा जाता है। लोग उन्हें भगवान शिव का अवतार मानते हैं। कहा जाता है कि गुरु गोरखनाथ एक साधू के वेश में शिराला गाँव में भिक्षा माँगने आया करते थे। एक बार नागपंचमी के दिन एक कुटिया के सामने जब उन्होंने भीख माँगी, तो उस घर की बुढ़िया

ने साधु से अनुरोध किया, "बाबाजी ! ठहर जाओ। मैं आपको नागपूजा के बाद भीख दूंगी।" गोरखनाथ ने चकित होकर मिट्टी की नाग मूर्ति में प्राण फूंक दिए। जीवित नाग ने बुढ़िया को कोई हानि नहीं पहुँचाई। उस दिन से नाग पंचमी के दिन जीवित नागों की पूजा वहाँ की रीति बन गई।

ऐसी ही अनेक कथाएं इस गाँव में नाग-पूजा से जुड़ी हुई समझी जाती हैं।

आज भी शिराला ग्राम की नागपंचमी धार्मिक एवं पवित्र उत्सव के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध है। पन्द्रह दिन पहले से ही नागपंचमी उत्सव की तैयारी शुरू हो जाती है।

बत्तीस शिराला की मुख्य गली को झंडियों इत्यादि से सजाया जाता है। लोग कागज की बनी बीनें बजाते हुए इस गली से गुजरते हैं। इस गली से गुजरकर लोग गाँव के पास स्थित एक मैदान में पहुँचते हैं। इस मैदान में नागपंचमी का मेला लगता है। मेले में दुकानदार विभिन्न आकारों के कोबरा साँप बेचते हैं। मेले में आए भक्त साँप खरीदकर अपने गले में लटका लेते हैं।

निकटवर्ती गाँवों से आए लोग एक शानदार जुलूस में झाँकियाँ निकालते हैं। इन झाँकियों में लोग घड़ों में जहरीले कोबरा साँप रखकर चलते हैं। घड़ों के मुँह पर रंगीन कपड़ा लपेटा होता है।

इस दिन विभिन्न परिवार के लोग साँप पकड़ने का मुकाबला करते हैं। प्रत्येक दल बोरी, बिल खोदने के लिए गेंती और छड़ी लेकर खेतों में जाता है। साँप पकड़कर उस बोरी में डाल दिया जाता है। उसका मुँह बाँधकर बाँस के डंडे के मध्य में लटकाकर लोग कंधे पर उठाते हैं। घर पहुँचकर साँप को मिट्टी की हांडी में डाल दिया जाता है और ऊपर ढक्कन पर कपड़ा बाँध दिया जाता है।

बड़े साँप या जिनके फणों पर धारियाँ हों, पकड़ना बहादुरी समझा जाता है। प्रतिदिन पकड़े गए साँपों को पाँच मिनट के लिए हवा के लिए खुला भी छोड़ दिया जाता है। उन्हें मेंढक या चूहे खाने के लिए दिए जाते हैं। शिराला ग्रामवासी को जहरीले और विष-रहित साँपों की अच्छी पहचान है; क्योंकि लोग साँपों की आदतों से परिचित हैं, इसलिए सर्प-दंश की घटनाएँ बहुत कम होती हैं। लड़के साँपों को नागपंचमी के दिन गले में लपेट लेते हैं।

कोबरा साँप को मारा नहीं जाता। यदि वह घर के भीतर मिले, तो उसे मिट्टी के घड़े में बन्द कर खेतों में खुला छोड़ दिया जाता है। यदि धोखे से ऐसा साँप मारा जाए तो मनुष्य की भाँति उसकी अन्त्येष्टि की जाती है।

कहा जाता है कि यहाँ नागपंचमी के दिन दिव्य कोबरा साँप उन लोगों को डसता नहीं है जो उन्हें कुछ समय के लिए अपने पास रखते हैं।

नागपंचमी के दिन साँपों के घड़ों को बैलगाड़ियों सहित बत्तीस शिराला गाँव के मुख्य मंदिर के अहाते के सामने पहुँचाया जाता है। इस नाग मन्दिर की गुंबज

भी सर्प बना है। अन्त में जुलूस में प्रदर्शित कुछ साँपों को मन्दिर में ले जाया जाता है। यहाँ पर नौ गज लम्बी नई साड़ियाँ पहने तथा नाक में सोने के छल्ले डालकर सजी-सँवरी महिलाएँ इन नागों की आरती उतारती हैं। आरती के समय ढोल, नगाड़े व अन्य वाद्ययन्त्र बजाए जाते हैं।

आरती के बाद धूपबत्ती व फूलों की महक के मध्य चाँदी के प्यालों में इन साँपों को दूध पिलाया जाता है। शाम होने पर जब सूर्य ढलने लगता है, तब इन साँपों को छोड़ दिया जाता है।

मेला समाप्त होने के बाद अगले दिन साँपों को झोंपड़ी में टिकने नहीं दिया जाता। जो साँप बाहर निकलते हैं, उन्हें पीटते हुए अगले वर्ष नागपंचमी तक के लिए बाहर निकाल दिया जाता है।

नागपंचमी के दिन भारत के विभिन्न क्षेत्रों में नाग या साँप मारना पाप समझा जाता है। घर में लोग पूजा के लिए मिट्टी, गोबर, सन्दल या अन्य लकड़ी, चाँदी या सोने की नाग प्रतिमाएँ बनाकर पूजते हैं। कोंकण में मदारी जीवित साँप लेकर घूमते हैं, जिन्हें श्रद्धालू लोग भेंट चढ़ाते हैं। इसी तरह बम्बई में भी ऐसी परम्परा चालू है। रात को प्रतिमा के आगे धूप, पुष्प और मिठाइयाँ रखी जाती हैं। रातजगा भी किया जाता है।

बंगाल में नागपंचमी सावन कृष्ण पक्ष की पंचमी को मनाई जाती है। यह पूजा भाद्रपद तक जारी रहती है। इस दिन लोग मिट्टी के ढेर पर एक दूधिया बाड़ पौधा लगाते हैं और उस पौधे को मनसा देवी का प्रतीक समझकर पूजा जाता है। यहाँ मनसा देवी का सम्बन्ध साँपों के राजा वासुकी नाग से जोड़ा जाता है। बिहार में औरतें गोबर की लकीरों के निशान घर की दीवारों पर बनाती हैं और शेषनाग की पूजा दूध और आनज से करती हैं।

उत्तर प्रदेश में नागपंचमी के दिन घर का मुखिया सुबह सवेरे सब से पहले नहा-धोकर सोने के कमरे की दीवार पर दो नागों की आकृतियाँ चित्रित करता है और ब्राह्मणों को दान देता है। लोग आठ प्रमुख नागों से प्रार्थना करते हैं। इसके उत्तर दिशा के जिलों में इस दिन मेले लगते हैं और साँप की बाम्बियाँ में सूखे चावल और दूध डाला जाता है।

उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले में गारे और गोबर से फर्श पर लेप किया जाता है। पाँच, सात या नौ नागों की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। धूप, दीप, फल, मिठाइयाँ और खाद्य-पदार्थ भेंट किए जाते हैं। रात-भर नाग महिमा सुनाई या पढ़ी जाती है।

मिरजापुर जिले में अनुसूचित जाति के कोल लोग नाग-पूजा करते हैं। कई गाँवों में मेले लगते हैं। उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में नागपंचमी भादों में मनाई जाती है।

पंजाब में नागपंचमी के दिन घर के कमरे की दीवार पर नाग की काली आकृति बनाई जाती है। उनका विचार है कि उस दिन नाग-पूजा सच्चे दिल से की जाए, तो वर्ष-भर सर्प नहीं दीखते। सर्प-दंश का भय नहीं रहता।

भले ही नागपंचमी मनाने की तिथियाँ या तरीकों में अन्तर हो, परन्तु नाग पंचमी सभी जगह मनाई जाती है। नागपंचमी के वर्तमान स्वरूप से यह बात तो अवश्य सिद्ध हो जाती है कि ग्रामीण जनता में साँप के प्रति भय और आदर भाव आज भी विद्यमान है। आज भी भारत के उत्तरी क्षेत्र में हिमालय में बसे ग्रामों में नागों के असंख्य पूज्य स्थल हैं, जहाँ उनकी पूजा होती है। इसी तरह गंगा, सिन्धु, नर्मदा और ताप्ती क्षेत्र में तथा आदिम जातियों में नागपूजा की विभिन्न पद्धतियाँ विद्यमान हैं। परन्तु एक बात सत्य है कि नागपूजा भारत की एक असाधारण और रोचक पूजा-परम्परा में से एक है और इसके अतीत एवं वर्तमान स्वरूप को देखकर भारत की रंग-बिरंगी और विविधता से परिपूर्ण शाश्वत पयस्वनी कला एवं संस्कृति से मानव आश्चर्यचकित तथा प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

ऐसा विश्वास भी भारतीय लोक-मानस में अब तक प्रचलित है कि बाँझ औरत यदि नाग देवता की धूप-दीप और दूध से नित्य पूजा करे, तो उसके सन्तान होने की संभावना बढ़ जाती है। परम्परागत रूप से साँपों का सम्बन्ध उत्पत्ति से जोड़ा जाता है।

प्राय: औरतें पीपल वृक्ष के नीचे रखे साँप के मुहरों को पूजती हैं। उन पर सन्दल, कुमकुम और मेंहदी का लेप करती हैं। पीपल वृक्ष की लगभग 108 बार परिक्रमा करती हैं, जिसे अश्वथा प्रदक्षनम् कहा जाता है। ब्राह्मण पूजा कराते हैं और जब प्रार्थी की प्रार्थना स्वीकार हो जाती है, तो वह नागदेवता का एक मुहरा बनाकर पीपल वृक्ष के नीचे रख देता है।

भारत के अनेक भागों में नागों की कपड़े की गुड़ियाँ बनाकर नागपंचमी के दिन पूजा जाता है।

सिद्ध बाबा सोडल

पंजाब में एक किवदन्ती के अनुसार एक दिन चड्ढा बिरादरी की कुछ औरतें अपने घर के मैले कपड़ों और बच्चों सहित जालन्धर शहर के बाहर बने एक प्राचीन तालाब पर पहुँची। कुछ देर के बाद एक चार-पाँच वर्षीय बालक (बाबा सोडल) जो शायद खेलने के बाद थक चुका था, माँ की पीठ के साथ लग कर बड़े प्यार से बोला, "माँ, मुझे भूख लगी है। चलो, घर चलें, मैं रोटी खाऊँगा।"

माँ बच्चे को अपनी पीठ से धकेलती हुई बोली, "जा, डूब मर, क्यों तंग कर

रहा है।" माँ ने गाली कुछ इस तरह निकाली कि बच्चे के कोमल हृदय को छू गई।

बालक सोडल ने बड़े भोले अन्दाज से माँ की ओर देखा और बोला, "माँ, तूने मुझे इतनी मन्नतें मानने के बाद माँगा है और अब तू ही कहती है कि डूब मर।"

माँ शायद बच्चे की इस बात को न समझ सकी और बोली, "हाँ-हाँ, मैं कह रही हूँ—जा, डूब मर, मुझे तंग मत कर।"

बाबा सोडल बड़ा भावुक था, माँ के शब्दों का बोझ न सहता हुआ, सचमुच तालाब की ओर बढ़ गया। माँ ने सोचा, मुझे डराने के लिए शायद ऐसा कर रहा है, अभी वापस आ जाएगा। लेकिन देखते ही देखते बालक सोडल के कदम गहरे पानी की ओर बढ़ने लगे। माँ को अपनी दुनिया लुटती हुई नजर आने लगी। उसका सिर चकराने लगा। बड़ी मुश्किल से उसके गले से निकला, "बेटा सोडल, रुक जा, आगे मत बढ़, आगे गहरा पानी है।"

लेकिन माँ के अन्तिम शब्द सुनने से पहले ही बालक जलमग्न हो चुका था। माँ ने भी बालक के पीछे पानी में छलाँग लगा दी। पानी के भीतर उसे बालक सोडल की चोटी दिखाई दी, हाथ बढ़ाकर चोटी को थाम लिया और बाहर खींचा, लेकिन यह क्या ? यह तो एक बहुत बड़े काले नाग की दुम थी। माँ के मुख से एकदम चीख-सी निकल गई। साँप पानी में लुप्त हो गया।

एक किंवदन्ती के अनुसार बालक सोडल को नाग देवता की कृपा से प्राप्त किया गया था, शायद अब वह बालक फिर नाग देवता के नागों में शामिल हो गया था।

यह कोई साधारण बालक नहीं था। बचपन से ही बड़ी-बड़ी भविष्य-वाणियाँ कर दिया करता था, जो कि बिलकुल सच्ची हुआ करती थीं।

अपनी एकमात्र सन्तान के छिन जाने पर माँ को बड़ा दुख हुआ। वह पागलों की तरह तालाब के चक्कर काटती। कभी तालाब के बीच जाकर मिट्टी निकालती, शायद उस अभागिन को आस थी अपने बेटे के पुनर्मिलन की। शायद माँ और बेटे का पुनः मिलाप होना नहीं लिखा था। बेचारी माँ भूखी-प्यासी कई दिनों तक तालाब के किनारे पर बैठी रही। बैठी-बैठी पानी की सतह को निहारती रही—इस आस में कि शायद अभी उसका बेटा पानी से बाहर निकल आएगा और वह उसे छाती से लगाकर खूब रोएगी।

वह रोज खाना लाती और तालाब के किनारे खड़ी होकर जोर-जोर से आवाज देती, "बेटा सोडल, देख मैं तेरे लिए खाना लायी हूँ। आ बेटा, खा ले।" लेकिन जब काफी पुकारने के बाद भी कोई उत्तर न मिलता तो बेचारी अन्न को तालाब की भेंट कर रोती हुई चली जाती।

माँ की तरह धीरे-धीरे सारी बिरादरी के लोगों ने उस स्थान को पूजना शुरू कर दिया। उस तालाब के पास ही एक छोटा-सा मन्दिर भी बना दिया गया। मन्दिर में बाबा सोडल की मूर्ति भी रख दी गई। जब और लोगों को भी बाबा सोडल के चमत्कारों का पता चला तो उन्होंने भी वहाँ पर आना शुरू कर दिया। अपनी-अपनी मन्नतों को पूरा होते देख वे वहाँ आते और मट्ठियाँ आदि का प्रसाद भी चढ़ाते।

हर वर्ष सितम्बर मास में अनन्त चौदस के दिन यहाँ एक बहुत भारी मेला लगता है। इस मेले में दूर-दूर से आए हुए लाखों पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे शामिल होते हैं। यहाँ आकर वे मन की मुरादें माँगते हैं और उनके पूरा होने पर बैंड-बाजों के साथ सपरिवार माथा टेकते हैं और प्रसाद चढ़ाते हैं। कहा जाता है कि बाबा सोडल के मन्दिर पर आकर जो मन्नतें माँगी जाती हैं, वे अवश्य पूरी होती हैं।

दक्षिण भारत में

पहली से चौथी शताब्दी तक दक्षिण भारत का बहुत बड़ा भाग नागपूजा परम्परा से प्रभावित था। इसके प्रमाण पटोलिमी द्वारा सोरिनगोई औरपोरऊ-रनोई के समुद्रतट के मुख्य नगरों के उल्लेख से मिलते है। ओर थउरा पर तोरनागों और मलंग नगर पर बसारनागों का आधिपत्य था। इसी प्रकारउ रंग-पुर या उरायपुर नगरों के नामों से स्पष्ट होता है कि ये नागों के नगर रहे। इसी काल में आन्ध्र क्षेत्र पर भी नागों का प्रभुत्व रहा। सातवाहन और उनके वंशज चुतुकुला सत्कर्णी राजा, ऐसा अनुमान किया जाता है, नाग जाति या नागपूजक शासक थे। सातवाहन वंश के अन्तिम शासक अलुमवी के राज्यकाल में एक नाग सरदार बेलरी क्षेत्र पर राज्य करता था। कहते हैं, नाग मूलनिका ने नाग और अपने पुत्र शिवस्कंदनागश्री को उपहारस्वरूप भेंट किया। नाग प्रतीकों के चिह्न कुछ आन्ध्र राजाओं की मुद्राओं पर भी मिले हैं। इनमें नांदी पाद और नाग प्रतीक मुद्राओं पर अंकित हैं।

दक्षिण भारत में कई जगहों पर नागों की मूर्तियां या चित्र ही नहीं, जीवित साँपों की पूजा की जाती है। तमिलनाडु एवं मलाबार समुद्रतट के साथ आज भी नागपूजा विद्यमान है। केरल प्रदेश की राजधानी त्रिवेन्द्रम का नाम भी तिरु अनन्तपुरम से बना है, जिसका अभिप्राय है—पवित्र नाग (शेषनाग)। अनन्तशयनम विष्णु का बहुत प्राचीन मन्दिर आज तक विद्यमान है। ऐसी किंवदन्ती है कि जहाँ अब एक मन्दिर है, कभी उस जगह पर घना वन था। एक बार पुल्य और उसकी धर्मपत्नी इस जगह के समीप अपने अनाज के खेत में हल चला रहे थे कि पुल्य की धर्मपत्नी ने एक बच्चे के रोने की ध्वनि सुनी। जाकर
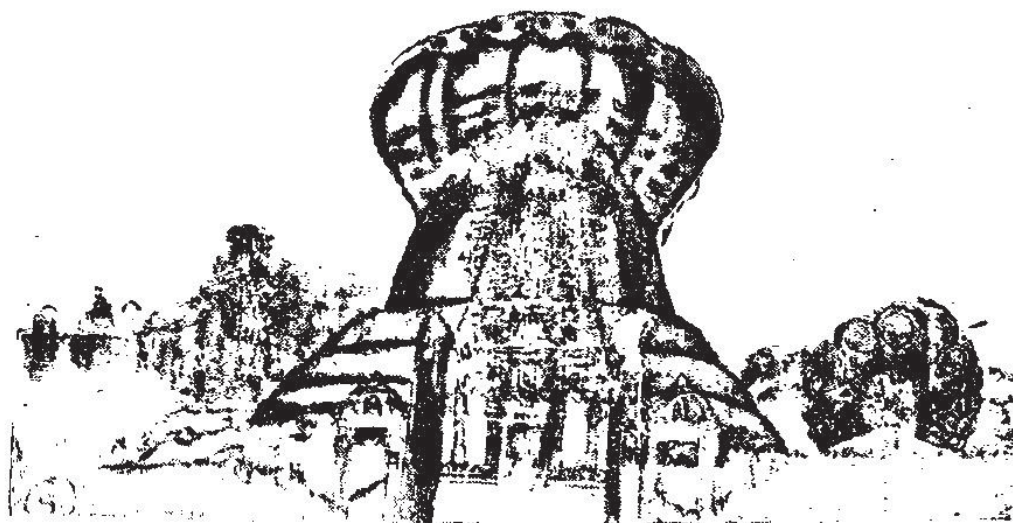
देखा तो एक अति सुन्दर दिव्य बच्चा पड़ा था। वह नहाकर ही उसे स्पर्श कर सकी। उसने बच्चे को अपना दूध पिलाया और दूध पिलाकर उसे एक वृक्ष की छाया में रखकर काम में व्यस्त हो गई। जब वापस लौटी, तो उस दिव्य बालक पर एक पाँच फणों वाला नाग उसे तेज धूप से बचाने के लिए छाया कर रहा था। बाद में मालूम हुआ कि बालक कोई और नहीं, विष्णु का अवतार था। पुल्य दम्पति प्रतिदिन नारियल के खोपे में इस दिव्य बच्चे को दूध और काँजी पिलाते रहे। जब ट्रावनकोर के राजा को यह मालूम हुआ, तो उसने उस जगह पर एक सुन्दर और भव्य मन्दिर निर्मित करवाया।

दक्षिण भारत में अब तक यह परम्परा चली आ रही है कि लोग अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए नागकल या नाग पाषाणों का निर्माण करते हैं, जिस पर कई फनों वाले नाग के साथ अनेक अन्य साँप खोदे हुए दिखाए जाते हैं। इन में से कई प्राचीन पत्थरों पर नाग का ऊपर का आधार शरीर मानव का, शेष नीचे के भाग को नाग के रूप में दिखाया जाता रहा है। ऐसे पत्थरों की बहुत भारी शिलायें प्रत्येक गाँव के शिव मन्दिर के एक आँगन में पड़ी मिलती हैं। ऐसा विश्वास है कि ऐसे पाषाणों का निर्माण उन औरतों द्वारा करवाया जाता है, जो या तो पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से या घातक बीमारी से बचने के लिए इन्हें मन्दिर या वृक्षों के नीचे रख देती हैं। ऐसे पाषाणों की विशेष पूजा नागपंचमी के दिन प्रायः की जाती है। दक्षिणी भारत में आज भी प्राचीन परम्परा अनुसार नागपंचमी के दिन विशेष पूजा की जाती है।

दक्षिणी भारत में नाग पूजा परम्परा विस्तृत क्षेत्र में विद्यमान है। ऊँची जाति के लोग साँप को मारना पाप समझते हैं। नाग शिलायें गाँव या नगर के

समीप पायी जाती हैं। ऐसी शिलाओं के समूह आज भी मन्दिर के प्रांगण में पवित्र वृक्ष के नीचे रखे मिल जाते हैं। बाँझ औरतें सन्तान-प्राप्ति पर एक नाग शिला बनवाती हैं। साधारण शिला पर एक नाग को फण फैलाए दिखाया जाता है।

असंख्य नाग मन्दिरों में कन्याकुमारी से लगभग बारह मील की दूरी पर, नगर कोयल का नाग मन्दिर भी नगर के मध्य पंचमुखी नागराज मन्दिर के कारण पड़ा है। इस मंदिर के चारों ओर बगीचा नागराज का प्रतीक नागपुष्प के लिए प्रसिद्ध है। स्थानीय लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस बगीचे की रखवाली नाग करते हैं, इसलिए इससे कोई पुष्प या नारियल चोरी नहीं किया जाता। मन्दिर के भीतर भी अनेक सर्प घूमते रहते हैं। फिर भी अभी तक किसी को साँपों ने नहीं काटा। डॉ० जेम्स हेस्टिंग की 'पुस्तक रिलीजन एवं एथिक्स इन्साइक्लोपीडिया' में वर्णित है—मन्दिर के एक मील के घेरे में सर्प-दंश से किसी की मृत्यु नहीं हुई। प्रतिवर्ष नागपंचमी के दिन यहाँ मेला जुड़ता है।

कई वर्ष पहले मन्दिर के सरोवर के समीप एक दोमुँहा नाग मिला था, उसके शरीर को आज तक समीप के भवन में सुरक्षित रखा गया है। नागों के छोटे-बड़े मोहरे मन्दिर के चारों ओर रखे मिलते हैं। मन्दिर के प्रवेशद्वार के दोनों ओर पाँच मुख वाले नाग की पाषाण की बनी हुई दो मूर्तियाँ दर्शक का ध्यान आकर्षित करती हैं। इस मन्दिर में प्रधान पूज्य देव नागराज की प्रतिमा के अतिरिक्त भगवान शिव तथा अनन्त कृष्ण की प्रतिमाएं भी विराजमान हैं। मण्डप के स्तम्भों पर जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा महावीर की छवियाँ अंकित हैं।

स्थानीय लोगों के अनुसार नागराज की पूजा से कई व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। रविवार के दिन दूध के अभिषेक को पूज्य समझा जाता है।

जिस स्थान पर पंचमुखी नागराज स्थापित है, वह हमेशा दलदल से भरा रहता है। इस स्थान से रेत बाहर निकालकर प्रसाद के रूप में भक्तों में बाँटी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि यह रेत छः महीने काली और छः महीने सफेद रहती है।

नागपटनम में एक प्रसिद्ध मन्दिर स्थापित है। मलाबार के समुद्रतट पर नागपूजा का प्रचलन है। कनड क्षेत्र में जिस व्यक्ति पर नाग देवता आता है, उन्हें नागमंत्री कहा जाता है। वे ब्राह्मण होते हैं और उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता है। लोग आपसी झगड़े निपटाने के लिए उनके पास जाते थे, उनके फैसले

को कानून समझा जाता था।

मैसूर में अनेकल और किकेरी में नाग कल की मनोहर मूर्तिकला आज भी दर्शक को अभिभूत कर देती है।

तमिलनाडु के लोकजीवन में नागपूजा-परम्परा अब तक प्रचलित है। नाग को मारना अपशकुन समझा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि नाग किसी को हानि नहीं पहुंचाते, जब तक उन्हें छेड़ा न जाए।

नागों की पाषाण प्रतिमाएं बनाकर पीपल वृक्ष के नीचे रखी जाती हैं। जिन बाम्बियों में नाग रहते हैं, उन्हें स्त्रियाँ और बच्चे पूजते हैं। इनमें दूध और अण्डे डाले जाते हैं। स्थानीय विश्वास के अनुसार नागपूजा से बच्चों की उत्पत्ति में सहायती मिलती है। इस क्षेत्र में नागपटनम, नागरकोयल, नाग नलाई नगर परम्परागत नागराज पूजा के कारण प्रसिद्ध हैं।

स्थानीय परम्परा अनुसार यदि गर्भवती महिला नाग को देख ले, तो बच्चे का नाम भी नाग नाम से रखा जाता है—नागस्वामी, नागराजनुनागापन्न, नागानाथिनम, नार्गलिगम, नागनाथन, नागननय या नागालक्ष्मी इत्यादि।

नागपूजा के लिए महिलाएँ बाम्बियों के समीप दूध, फलाहार, पुष्प और धूप रखकर नागस्तुति करती हैं—

हे नागराज ! जो बाम्बी में भूमिगत रहते हैं।
तुम्हारी दुम रत्न की छड़ी की भाँति सुन्दर है।
तुम्हारा उठा हुआ छत्र छोटे फटकन पंखे की भाँति है
तुम्हारी आँखें हीरे की भाँति चमकती हैं
तुम्हारे दाँत श्वेत कच्चे चावल के दाने की भाँति चमकदार हैं
वंशानुगत मजदूर देवेन्द्र कुदुम्बन
अपने कन्धे पर कुदाल उठाए सरोवर के पास खोदने गया है
उसे हानि न पहुँचाना
कृपया उठा हुआ फन वापस कर लो
उसके लिए मार्ग प्रशस्त कीजिए
ए अच्छे नाग !

केरल में चलाकुदी से पाँच किलोमीटर दूर पाम्पुमेक्कट्टुमाना के वनों में नागमन्दिर में आज भी लोग चावल, धूप, दीप, पुष्प और अगरबत्ती जलाकर बड़ी श्रद्धा से नागपूजा करते हैं। पत्थरों से बनी दीवारों, घना वन, मन्दिर, तालाब और पाषाण के बने फणों वाले नागों की प्रतिमाओं से सारा वातावरण अलौकिक दीखता है। कहते हैं यह मन्दिर पाँच शताब्दी पहले

नागाक्षी नाग की पूजा के लिए बना था। इस मन्दिर का प्रबन्ध पाम्पुमेक्कट्टु नम्बूदरी परिवार द्वारा चलाया जाता है। इस परिवार को न केवल सर्पाकावू एक जगह से दूसरी जगह ले जाने का अधिकार है, बल्कि लोकविश्वास अनुसार नागों पर पूरा अधिकार भी है। कोई भी नाग इस परिवार के सदस्यों को नहीं काटता और वे इस परिवार की हर तरह रक्षा करते हैं। नवम्बर-दिसम्बर में चार दिन का उत्सव प्रति वर्ष इस मन्दिर में मनाया जाता है, और श्रद्धालु लोग नागबनी में दूध भेंट कर मनौतियाँ मनाते हैं। नम्बूदरी परिवार के अनुसार नाग के दर्शन संकट के समय या मन्दिर की अपवित्रता की स्थिति में होते हैं। इस उत्सव में नम्बूदरी स्त्रियों द्वारा तैयार नाग वन्दना के भजन—सर्पापट्टू गाये जाते हैं। यहाँ के नाग भक्तों के अनुसार, किसी को नाग शक्ति की परीक्षा का साहस नहीं करना चाहिए। कहते हैं, एक बार एक विदेशी ने उत्सुकतावश नागदर्शन की चाह प्रकट की। नम्बूदरी पुजारिन ने उसे ऐसा शक्ति-परीक्षण न करने की सलाह दी; पर जब वह नहीं माना, तो उसने आगन्तुक को एक आँख बन्द कर बनी में देखने को कहा। आगन्तुक के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने असंख्य नागों को फण फैलाये नाचते हुए देखा। परन्तु जब उसने दूसरी आँख खोली, तो उसकी दृष्टि उससे चली गई थी। लोगों का विश्वास है कि साँप के काटे का उपचार, त्वचा रोग और बाँझपन का इलाज इस मन्दिर के नागदेवता की पूजा से सम्भव है।

कहते हैं, कई सौ वर्ष पहले एक नम्बूदरी स्त्री ने केरल में हरिपाद के समीप मान्नारसला मन्दिर में एक बालक के लिए प्रार्थना की। समय पाकर उसकी कोख से एक पुत्र और एक नाग का जन्म हुआ। नाग ने भयभीत माँ को अपनी पूजा करने का उपदेश दिया। मान्नारसला मन्दिर में प्रायः नम्बूदरी परिवार की वरिष्ठ स्त्री ही पुजारिन बनती है। सम्भवतः यही भारत में एक ऐसा मन्दिर है, जहाँ स्त्री पुजारिन का कार्य करती है। यहाँ का वार्षिक उत्सव सितम्बर में मनाया जाता है। बाँझ औरतें यहाँ विशेष पूजा करती हैं। इसके बाद पुजारिन दम्पति को निश्चित दिन पर आने की सलाह देती है। उस दिन असली (चौड़ा पूजा पात्र) दम्पति के सामने उठाती है। यदि उसके नीचे साँप के अण्डे मिल जायें, तो यह दम्पति के घर बच्चा होने का चिह्न समझा जाता है।

तमिलनाडु में नागरकोयल में नागाराम्मान मंदिर का सम्बन्ध भी केरल के नाग पुजारिन परिवार पाम्पुमेक्कट्टुमाना से जोड़ा जाता है। दक्षिण के कई भागों में, विशेषकर केरल और तमिलनाडु में पौराणिक आठ नागों (अष्टनाग)—अनन्त, वासुकी, करकोटका, पिंगलाका, शंखू, पद्मा, महापद्मा और तक्षक की पूजा होती है। इस क्षेत्र में नागपूजा-परम्परा की जड़ें बहुत गहरी हैं, क्योंकि इसका

सम्बन्ध यहाँ की लोकपरम्परा में पारिवारिक अन्न-धन की समृद्धि से जोड़ा जाता है। कई परिवारों के कुलदेवता के रूप में समय-समय पर और विशेष उत्सवों पर नागपूजा की जाती है। तमिलनाडु और केरल में पीपल वृक्ष के नीचे (किसानों द्वार) मंदिरों में नागपूजा की प्रथा अब भी लोकप्रिय है। मंदिर में पूजा के बाद नाग प्रतिमाओं के सामने दूध, पुष्प और फलों की भेंट चढ़ाते हैं।

स्थानीय लोककथा अनुसार भगवान परशुराम की आज्ञानुसार केरल में घर के आँगन में एक पवित्र कोने में नागपूजा का स्थान निश्चित रखा जाता है। यहाँ नागपूजा के मंदिर को सर्पाकावू भी कहा जाता है। प्रायः नम्बूदरी और नायर परिवारों में नागपूजा का प्रचलन है। समय-समय पर दक्षिण भारत में पम्बिन्थुलाल उत्सव नागपूजा के रूप में मनाया जाता है। साफ-सी जगह पर नाग-आकृतियाँ बनाई जाती हैं। एक नायर पुजारी उनके सामने मन्त्र और प्रार्थना द्वारा नागपूजा करता है और औरतें उन्मत्त नृत्य करती हैं। कहते हैं इस स्थिति में वे जो भविष्यवाणी करती हैं, वह सत्य होती है।

विचित्र घटनायें

भारत के अनेक भागों में कई विचित्र घटनाएँ समाचारों में छपती रहती हैं, जिनसे नागों में दिव्यज्ञान की झलक का आभास होता है, या कोई आत्मा साँप बनकर सच्चा मार्ग दिखाती है।

लगभग सौ वर्ष पहले दक्षिण भारत में एक अमीर एवं धार्मिक विचारों वाली स्त्री अपने अमूल्य अलंकार पहने अपने नौकर के साथ बैलगाड़ी में बैठकर गाँव के समीप लगने वाले मेले में शामिल होने के लिए जा रही थी। नौकर बैलगाड़ी चला रहा था। कुछ मील दूर चलकर बैलगाड़ी को एक वीरान जगह पर ले गया कि उधर से मार्ग छोटा है। वह जगह वृक्षों और झाड़ियों से घिरी थी। उसने मालकिन को बैलगाड़ी से उतरने के लिए कहा। उसने बैल खोल दिए और गाड़ी के पहिए के साथ बाँध दिए। नौकर के विचित्र व्यवहार पर स्त्री को सन्देह हो गया कि वह उसके अमूल्य हीरे-जवाहरात चोरी करना चाहता है और उसे मारना चाहता है। उसने नौकर से कहा—उसने काफी समय तक उसका नमक खाया है, वह उसको न मारे, परन्तु उसकी विनती की उसने परवाह न की। मृत्यु समीप देखकर स्त्री बेहोश हो गई। नौकर को जब उसे मारने के लिए कुछ न मिला, तो समीप ही उसे एक बड़ा-सा पत्थर पड़ा मिल गया। वह पत्थर उठाने गया, परन्तु जब वह पत्थर उठा रहा था, तो एक काले फनियर नाग ने, जो उस पत्थर के नीचे से निकला, उसे दंश से मार दिया। दो मजदूर उधर से गुजरे। उन्होंने एक बेहोश स्त्री, एक मरे व्यक्ति

और बैलगाड़ी को देखा। उन्होंने दया कर बेहोश स्त्री पर छींटे मारे, तो उसे होश आ गया और मजदूरों ने उसे सुरक्षित घर पहुँचाया।

इसी तरह केरल में जब मोपला विद्रोह के कारण अराजकता फैल गई, तब कुछ डाकू एक जमींदार के घर में दाखिल हो गए, और उनके अमूल्य हीरे-जवाहरात लूटने लगे। अचानक कई फनियर नाग गड्ढे से निकले। उनकी फुंकार से डरकर डाकू भाग खड़े हुए।

ऐसे समाचार कई बार समाचारपत्रों में प्रकाशित होते रहे हैं, कि किस तरह चोर किसी मंदिर में घुस गए, परन्तु मंदिर से कोई बड़ा नाग निकला और चोरों की टाँगों से लिपट गया और तब तक नहीं छोड़ा, जब तक चोरों को पुलिस पकड़कर नहीं ले गई। इटावा जनपद के ओरियो कस्बे में एक नाग द्वारा एक दो वर्षीय बच्चे को टांग से घसीटकर आग में जलने से बचाने का समाचार १४ जून, १९८२ के समाचारपत्रों में छपा था। मां जब घर में दाखिल हुई, उसने यह घटना अपनी आंखों से देखी और उसके आते ही नाग बच्चे को छोड़कर अदृश्य हो गया। यही साँप पन्द्रह दिन पहले भी बच्चे की रखवाली करते देखा गया और लोगों के आने पर अदृश्य हो गया था।
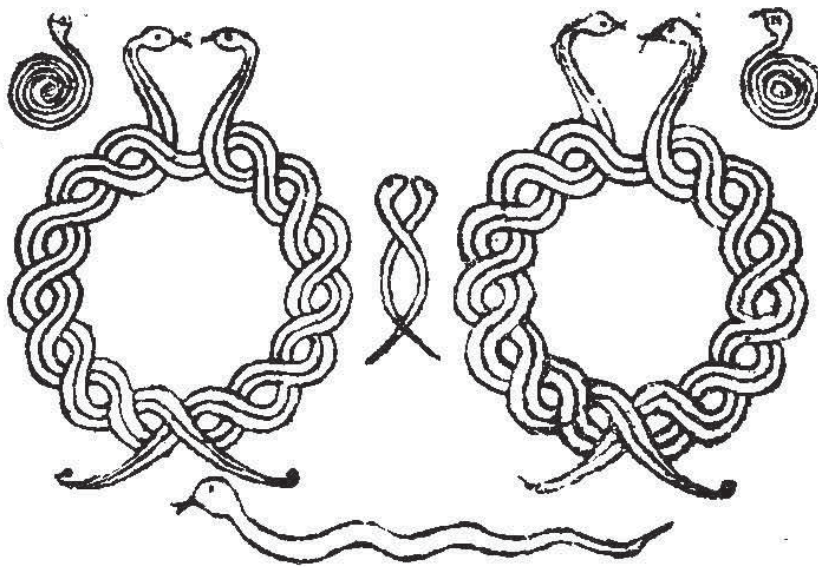
यह घटना दो वर्ष पहले की है, जब बाद दोपहर थानेसर में बने ब्रह्मसरोवर के पूर्वी किनारे पर उस समय सनसनी फैल गई जबकि सरोवर पर पत्थर लगाने वाले एक राजस्थानी मजदूर ने अज्ञानतावश बाबा खड़ेश्वरी महाराज की समाधि पर पेशाब कर दिया। समाधि से एक सांप आया और खड़ा हो गया। मजदूर डर के मारे भागने लगा, तो शरीर भारी हो गया और टूटने लगा। उसके साथी उसे घर ले आए। घर आते ही उसकी आवाज भारी हो गई। खड़ेश्वरी बाबा की आत्मा बोलने लगी, कि उनकी समाधि को अपवित्र किया

जा रहा है, उसे साफ किया जाए। उस आत्मा ने हनुमानचालीसा पढ़ा और चली गई। उसके बाद उस जगह से वह सांप भी अदृश्य हो गया।

इस प्रकार देखते हैं, कि वर्तमान भारत में परम्परागत नागपूजा जारी है, परन्तु विज्ञान और भौतिकवाद की चकाचौंध के कारण कुछ पद्धतियां और रीतियां धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही हैं। इन परम्पराओं में कितनी आध्यात्मिकता और कितना अन्धविश्वास है, यह अलग से अनुसन्धान का विषय हो सकता है।

जम्मू-कश्मीर में नागपूजा

नागपूजा परम्परा के लिए अनेक भागों में हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, असम, महाराष्ट्र, बंगाल, उड़ीसा, दक्षिण भारत के नाम लिये जा सकते हैं। नागपूजा आज भी भारत के असंख्य मंदिरों, अन्य पवित्र स्थलों एवं सरोवरों, नदी-नालों एवं पहाड़ों में जीवित है। ऐसा लगता है जैसे इसमें कहीं हमारी संस्कृति का एक सुदृढ़ सूत्र जुड़ा हुआ है। नाग सांप थे, राजाओं के भय का प्रतीक नागचिह्न था, जाति थी या हिन्दू देवी-देवता पूजा में से यह भी एक परम्परा थी, इस बारे में स्पष्ट और प्रामाणिक रूप से कहना आज अत्यन्त कठिन है। परन्तु यह तो कहा ही जा सकता है कि इन सभी कारणों से नाग भारतीय संस्कृति एवं धर्म का एक अभिन्न अंग अवश्य बन गए।

नागपूजा पहाड़ों में आज तक प्रचलित है। इसका ज्वलंत उदाहरण हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, टिहरी गढ़वाल, नेपाल में विद्यमान अनेक प्राचीन नाग मंदिर तथा इनमें प्रतिदिन श्रद्धालु जनता द्वारा पूजा-परम्परा है।

जम्मू-कश्मीर क्षेत्र में नागपूजा के प्रचलन का विशेष उल्लेख कल्हण की प्रसिद्ध संस्कृत रचना 'राजतरंगिनी' में मिलता है। यह पुस्तक 1750 ईस्वी उपरान्त लिखी मानी जाती है। कश्मीर में नागपूजा लोकप्रिय रही। उन्हें जलात्मा समझा जाता था, जो झीलों और चश्मों में घूमती रहती है, जो क्रोधित होकर ओलावृष्टि, हिमपात और भयानक बाढ़ के रूप में प्रकट करते हैं।

'राजतरंगिनी' के अनुसार, जम्मू-कश्मीर का संरक्षक नील नाग को माना जाता रहा है, जिसे कश्मीर के सभी नागों का प्रमुख समझा जाता है। इसका निवास-स्थान भी वितस्ता (झेलम) नदी का उद्गम माना गया है, जो अकबर काल से बेरीनाग के नाम से प्रसिद्ध है। बेरीनाग कश्मीर का सर्वोत्तम जल-स्रोत है। कश्मीर पर जब हिन्दूराजा शासन करते थे, तब यह स्थान नीलनाग के नाम से प्रसिद्ध था और प्रतिवर्ष नागपूजा के लिए पावन तीर्थ समझकर लोग यहां की तीर्थयात्रा करते थे। इसके चारों ओर पत्थरों की दीवारें हैं और बीच में एक बड़ा सुन्दर कुंड है। इसमें आने-जाने के लिए दोनों ओर द्वार बने हुए हैं, जिसके मध्य कुंड का जल झरने का रूप धारण करके गुनगुनाता हुआ चंचल

गति से श्रीनगर की ओर बहता चला जाता है। कुंड का जल इतना निर्मल है, कि सतह तक साफ दिखाई देता है। जल का रंग बिलकुल नीला है मानो मां प्रकृति ने इसमें गहरा नीला रंग घोल दिया है। कल्हण के अनुसार राजा अभिमन्यु प्रथम के राज्यकाल में बौद्धमतावलम्बी नागार्जुन इतना शक्तिशाली बन गया कि उसने नीलनाग की नीलपुराण के अनुसार पूजा रीति ही समाप्त कर दी। इस पर नागराज नील क्रुद्ध हो उठे। उस वर्ष इतना भारी हिमपात हुआ, कि लोग अत्यन्त दुखी हो गये और शासक को दर्वाभिसारा के स्थान पर शरण लेनी पड़ी। बौद्ध लोग नष्ट हो गये। चन्द्र देव ब्राह्मण ने नीलनाग का क्रोध शांत करने के लिए घोर तपस्या प्रारंभ की। नीलनाग ने फिर नयी पूजाविधि प्रकट की ताकि जनता का दुख दूर हो। नील पुराण को नीलमाता भी कहा है। इसमें नागपूजा के बारे में बहुत जानकारी उपलब्ध है।

चैत्र मास में इस जनपद में इरामंजरी पूजा उत्सव मनाया जाता है, जिसमें नील नाग और अन्य नाग भी सम्मिलित होते हैं। यहां देवलोक की एक परी थी, जिसे राजा इन्द्र ने शाप देकर एक पौधा बना दिया था। यह पौधा हिमालय में ही उगता है। नीलपुराण में वर्णन है—अन्य नागों की तथा मेरी पूजा बुद्धिमान लोग करते हैं। जो मेरी पूजा इस पुष्प द्वारा करता है, उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हो जाता हूं।

नीलमाता पुराण में वरुण पंचमी का वर्णन है जो नागपंचमी का ही दूसरा नाम समझा जाता है। इस महोत्सव में वरुण देवता को सभी नागाओं का अधि-देव समझा जाता है।

अनन्तनाग के नाम से आज भी कश्मीर का एक सुन्दर नगर प्रसिद्ध है। कभी यहां पर अनन्तनाग की पूजा लोकप्रिय रही होगी। तक्षक नाग की पूजा अब तक जारी है, क्योंकि लोगों की धारणा है कि केसर पुष्प की उत्पत्ति तक्षक नाग के कारण हुई है। जेवन ग्राम के सरोवर में आज तक तक्षक की पूजा होती है। कल्हण के अनुसार जेठ की सोलहवीं शुक्लपक्ष के दिन प्रतिवर्ष इसकी पूजा होती है। कहते हैं नरपुर के नष्ट करने में भी तक्षक ने विशेष भूमिका निभाई थी। ककोदर के स्थान पर तोशा मैदान में कर्कोटका नाग का तीर्थधाम समझा जाता है। अकबर के मन्त्री अबुल फजल ने भी कश्मीर क्षेत्र में नाग-पूजा की लोक-प्रियता के बारे में लिखा है।

वितस्ता नदी को तक्षक नाग का निवास भी समझा जाता है। बिल्हण के अनुसार जयवन में एक पवित्र सरोवर का सम्बन्ध भी तक्षक नाग से जोड़ा जाता है। अबुल फजल ने अनेक अन्य चमत्कारी नागों के बारे में भी लिखा है। उसने लिखा है कि बेरीनाग के समीप एक चश्मा है जो छह महीने सूखा रहता है। विशेष दिन पर पड़ोस के गांवों से किसान इकट्ठे होते हैं और बकरी या भेड़

का बलिदान कर पूजा करते हैं। चमत्कार की बात यह है कि तुरन्त जल बह निकलता है, जिससे समीप के पांच ग्रामों को पानी उपलब्ध होता है। इसी तरह एक ओर चश्मा है, जो कोकर नाग के नाम से प्रसिद्ध है। इसका जल स्वच्छ, शीतल और स्वस्थप्रद समझा जाता है। कहते हैं कि यदि भूखा व्यक्ति इस जल को पीता है, उसकी भूख मिट जाती है और उसके बाद भूख भी बढ़ जाती है।

कल्हण ने 'राजतरंगिनी' में तक्षक उत्सव का विशद वर्णन किया है, जिसमें लोकनर्तक और लोकसंगीत द्वारा हज़ारों श्रद्धालुओं का मनोरंजन होता है। यह उत्सव ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की १ या २ तिथि को समपन्न होता है। सुसरवा-नाग अपनी दो पुत्रियों सहित इस उत्सव में सम्मिलित होता है।

हिमालय क्षेत्र में नागों की पूजा होती है। प्रत्येक नाग का व्यक्तिगत नाम है जिनके नाम की उत्पत्ति और अर्थ अस्पष्ट हैं। कई बार उनके नाम उन गांवों के नाम से रखे गए हैं, जहां उनके मंदिर हैं। वेदों, शास्त्रों एवं पौराणिक साहित्य में गिने गए नाम बहुत ही कम प्रयोग किए जाते हैं। पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में वासुकी नाग को वासुकी या बासक नाग के नाम से पूजा जाता है। भद्रवाह चम्बा और कुल्लू में इस नाग को विशेष मान्यता प्राप्त है। वासुकी नाग के मंदिर भद्रवाह के दो गांवों—भेजा ऊपर, भेज़ा जकला और नालटी में हैं। स्थानीय परम्परा अनुसार वासुकी के दो भाई महल नाग और स्वर नाग हैं। स्वर नाग से भी लोग बहुत डरते हैं और उसका मंदिर भी इसी जनपद में देवदारू वृक्षों के मध्य बना है।

जम्मू में भद्रवाह नगर से 15 मील की दूरी पर कैलाश कुण्ड जलसर हैं, जिसे स्थानीय लोग अत्यन्त पवित्र मानते हैं। बहुत पुराने समय में गरुड़ और नागों में शत्रुता चरम सीमा तक पहुंच गई थी। गरुड़ ने सभी सांपों को समाप्त करने का निश्चय किया। नागों के राजा वासुकी ने भद्रवाह की पहाड़ियों में शरण ली। परन्तु गरुड़ किसी प्रकार से भी उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। वह पीछा करते-करते कैलाशकुंड पहुंच गये। वहां उन्हें भद्रकाली से पता चला कि वह कैलाशकुंड में छिप गया है, इसलिए उन्होंने झील के एक किनारे को नीचे झुका लिया और उसका जल बाहर निकालने लगे। भयभीत वासुकी ने सरस्वती से प्रार्थना की जिसकी झील कैलाश झील से कुछ ऊंचाई पर थी। सरस्वती ने उसकी प्रार्थना मान ली। उस झील से पानी निकलकर कैलाशकुंड में आने लगा। यह देखकर कि कैलाशकुंड का पानी फिर भी रहस्यपूर्ण रूप से भरता जा रहा है, गरुड़ ने प्रयत्न छोड़ दिया। वासुकी नाग ने चैन की सांस ली। इस झील को इसलिए कैलाशकुंड के अतिरिक्त वासुकी कुण्ड या वास कुण्ड भी कहते हैं।

परन्तु इस से कुछ भिन्न दन्तकथा अनुसार गरुड़ जब वासुकी को खोजता हुआ कैलाश पर पहुंचा और उसे यह मालूम हो गया कि वासुकी नाग कैलाश सरोवर में छिप गया है, उसने झील का पानी पी लेने की ठानी। परन्तु ज्यों-ज्यों वह पानी पीता जाता था, ऊपर की झील से पानी आकर क्षतिपूर्ति कर देता था। जब वह निराश हो गया, तो कुछ देर विश्राम कर सोचने लगा कि अब क्या किया जाए ? उसी क्षण जीमूतवाहन उन्हें झील के किनारे पूजा करते नज़र आये। गरुड़ को देखकर उन्होंने अपना मांस पक्षिराज को यह कहकर भेंट किया कि इस नश्वर शरीर का इससे अच्छा सदुपयोग नहीं हो सकता। ऋषि के इस आत्मबलिदान को देखकर गरुड़ ने उसे वर मांगने को कहा। इस पर जीमूतवाहन ने कहा, "कृपया आप वासुकी से शत्रुता छोड़ दें।" गरुड़ को ऐसा ही करना पड़ा। प्रतिवर्ष भाद्रमास जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और अन्य स्थानों से हजारों लोग इस पवित्र धाम की यात्रा करते हैं। कई बार अपने आपको भाग्यशाली समझने वाले यात्रियों ने एक बड़े नाग को रेंगते हुए देखा है। ऐसा होने पर लोग नागराज वासुकी की जय के नारों से आकाश गूंजा देते हैं।

कश्मीर के कैलाश पर्वत पर इस कुण्ड से ऊपर चढ़ते हुए एक और जल-सरोवर है, जो काली कुंड के नाम से प्रसिद्ध है। यह कुंड देखने में काले साँप की तरह भयानक लगता है। इसी पर्वत की दूसरी ओर एक अन्य छोटी झील शेषनाग के नाम से प्रसिद्ध है। इस झील में स्थानीय लोगों के अनुसार नाग ही नाग रहते हैं। स्थानीय लोगों के मतानुसार इस पर्वत पर छोटी-बड़ी 108 झीलें हैं। इन झीलों से अनेक नदी-नाले निकलते हैं, जिनमें तवी, वसन्तर और नीरू नदियों के नाम लिये जा सकते हैं।

'राजतरंगिनी' में नरपुर के राजा नर का उल्लेख भी किया गया है। नाग-राज सुसरवा नाग की अतिसुन्दर कन्या का विवाह एक ब्राह्मण से हो गया। किसी तरह राजा नर तक उसके अनुपम सौन्दर्य की ख्याति पहुंच गई। राजा नर ने पहले तो साधारण रूप से राजमहल में आने का निमन्त्रण दिया। जब वह नहीं आयी, तो उससे बलपूर्वक उठा ले जाने का प्रयत्न किया। इस घटना की सूचना जब उसके पिता सुसरवा नाग को मिली, वह बड़ा क्रोधित हुआ। उसने अपनी शक्ति से नरपुर को नष्ट कर दिया। परन्तु बाद में उसे अपने किए पर पछतावा हुआ और दूर कहीं एकांत झील में अपना निवास रखा।

जैसा कि पहले लिखा गया है, कि गरुड़ से जान बचाकर वासुकी नाग भद्र-वाह आया, जहाँ पहले भद्रकाली का निवास था। भगवती को उस पर दया आ गई और अपना राज्य वासुकी को देकर स्वयं कैलाश पर्वत पर स्थित काली सरोवर में निवास करने लगी।

वासुकी नाग को भद्रवाह् के लोग अपना कुलदेवता समझते हैं। भद्रवाह् के अतिरिक्त वासुकी नाग के अनेक मंदिर इस क्षेत्र में जगह्-जगह पर विद्यमान हैं। इनमें से उल्लेखनीय नगर और गथा के नाग मंदिर हैं। वसकनाग में वासुकी का लकड़ी का एक सुन्दर मंदिर आशापटी की पृष्ठभूमि में बना है। इस मंदिर में वासुकी और जीमूतवाहन की 6 फुट ऊंची काले पत्थर की सुन्दर मूर्तियां स्थापित हैं। इन मंदिरों के पास प्रतिवर्ष वैशाखी और नागपंचमी को मेले जुड़ते हैं। माघ संक्रांति के दिन इन मूर्तियों को ढक दिया जाता है और तीन महीने तक इन मूर्तियों के केवल चरण ही दीखते हैं और पूजे जाते हैं। वैशाखी के दिन पर्दे उतार दिये जाते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन तीन महीनों में वासुकी नाग पाताललोक (नागलोक) चले जाते हैं।

वासुकी नाग के अतिरिक्त सबरधार नाग भेलखा, महलनाग चिन्ता और भूधर नाग की भी पूजा होती है। मेलों एवं त्योहारों के अवसर पर लोग इन मंदिरों में दूध, पुष्प, फल, अनाज और सिक्के चढ़ाते हैं। सारे भद्रवाह् क्षेत्र में नागपूजा प्रचलित है। सबरधर नाग को लोग शेषनाग का अवतार मानते हैं। भद्रवाह् से तीन मील की दूरी पर यवा ग्राम में तक्षक नाग का भी मंदिर है। महलनाग के मंदिर अथोली और अहोली (पडारक्षेत्र) किश्तवार तहसील में हैं।

नागवनी में भी नाग का मंदिर है। इसके अतिरिक्त कथुवा में बाबा सुरगल नाग का मंदिर है। नागपंचमी के बाद ऋषिपंचमी के दिन यहां मेला लगता है और लोग लस्सी, दही, आटा, चीनी और पैसे भेंट चढ़ाते हैं। कहते हैं, ऐसे अवसर पर प्राय: एक श्वेत नाग भी निकलते देखा गया है। इस स्थान पर नागों के प्रतीक अनेक पत्थर भी हैं और लोहे की सलाखों के झण्डे भी हैं। लोगों का विश्वास है कि पर्व के बाद साँप और बिच्छू निकलने बंद हो जाते हैं।

जम्मू-कश्मीर कथुवा और बसौहली तहसील में कुछ ऐसे पुण्य स्थान समझे जाते हैं, जहाँ साँप के काटे का इलाज संभव है। उधमपुर नगर में सुरगल देवता का मंदिर भी है। जम्मू में रामनगर से पाँच मील दूर खरसर ग्राम में नागदेवता का मंदिर है। लोग यहां हलवा चढ़ाते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि नाग इसे छूते हैं, उसके बाद लोगों में प्रसाद बनाकर बांटा जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि एक बार एक स्त्री ने एक बालिका और नाग को जन्म दिया। नाग को बसी में भेज दिया गया, परन्तु उसने जाते समय यह कहा कि उसे बहन के विवाह के समय बुलाया जाए। विवाह के समय ऐसा किया गया और कहते है, साँप अपने फन में कुछ अलंकार भेंट करने आया। दूसरी सुबह जब लोगों ने साँप को देखा तो शोर मचाया। लोगों ने उसका पीछा

किया। साँप बेचारा जान बचाकर भागा। दुर्भाग्य से साँप उबलते चावलों की मांड में गिरकर मर गया। इसके बाद लोगों पर अनेक आपत्तियाँ आयीं। बहन को एक रात सपने में भाई ने कहा, कि लोगों के पाप का प्रायश्चित तभी होगा यदि वह उसके लिए वहाँ एक मंदिर बना दें। लोगों ने ऐसा ही किया और आपत्ति से छुटकारा पाया।

लकड़ू देवता ननिहाल और किश्तवाड़ के क्षेत्र के बीच लकड़ नाग देवता का पवित्र स्थान डोडा में देसी जगह पर है। उस जगह पर किसी समय बहुत बड़ा नाग देवता का वृक्ष था, जिसे जंगल में ठेकेदार के कहने पर काट दिया गया। इसकी जड़ों और तने के नीचे हज़ारों दीपक प्राप्त हुए। जब तने को खोदा गया तो एक बड़ा साँप सामने आ गया। ठेकेदार के नौकरों ने उसे मार दिया और दूसरे दिन मारने वाले नौकर को भी मरा हुआ पाया गया। इतना ही नहीं, बड़े-बड़े लकड़ों को बहाने के लिए जो लकड़ी का यंत्र तैयार किया गया था, उसमें ऐसी उलझन पैदा हो गई कि सुलझने में ही न आयी। ठेकेदार व्यक्तिगत रूप से वहाँ आया और उस जगह प्रणाम किया। एक या दो बकरी की बलि दी। जल एक बार फिर अवनालिका से होकर बहने लगा। उस दिन के बाद से उस जगह को चारों ओर से बंद कर दिया गया है और अब सभी लोग उस जगह श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं। उस पवित्र स्थान पर कोई भी झूठ नहीं बोल सकता। यह जगह जनता की पंचायत बन गई है, प्रत्येक झगड़े का यहाँ निपटारा किया जाता है।

कुकरनाग तथा अनन्तनाग में नागों के चश्मे हैं। नागसेनी क्षेत्र में जो किश्तवाड़ से 12 मील की दूरी पर है, नागपूजा से सम्बन्धित कुछ चश्मे हैं। इनमें अधिक प्रसिद्ध एवं पवित्र गुमानी नाग या गुमाई नाग का तालाब माना जाता है। यहाँ पर जब सूखा पड़ जाए, अधिक वर्षा हो जाए और मनोकामना पूरी हो जाए, बकरी की बलि दी जाती है।

जम्मू जनपद में प्रतिवर्ष जुड़ने वाले मैले पट्टे का प्रारंभ भी अत्यन्त रोचक है। परम्परानुसार इसे भद्रवाह के प्रसिद्ध राजा नागपाल से जोड़ा जाता है। मुगल सम्राट अकबर (1556-1605 ई०) के समय राजा नागपाल को दिल्ली दरबार में निमन्त्रित किया गया। नागपाल एक आध्यात्मिक रुचिवाला राजा था। जब वह सम्राट के सामने गया, तब उसने सिर न झुकाकर सीधे अभिनन्दन किया। यह बात पसन्द नहीं की गई। दूसरे दिन घमण्डी राजा के लिए एक छोटे द्वार से गुजरने का प्रबन्ध किया गया, ताकि उन्हें सम्राट अकबर के सामने जाना पड़े और उसका शीश स्वयं ही झुक जाए। परन्तु राजा सिर की बजाय पहले पांव डालकर भीतर गया और इस प्रकार सिर सीधा रहा। दरबार में सन्नाटा छा गया और उससे पूछा गया कि उसने भारत सम्राट का

यथोचित आदर क्यों नहीं किया। राजा नागपाल ने उत्तर दिया कि वह नाग-राज वासुकी का भक्त है और वह शीश इष्ट देवता के अतिरिक्त किसी अन्य के सामने नहीं झुकता।

राजा नागपाल को कुलदेवता की महानता प्रदर्शित करने के लिए कहा गया। राजा ने एक दिन का समय माँगा। उस रात राजा ने अपने इष्ट देवता वासुकी नाग से गहन भक्ति में डूबकर प्रार्थना की। नींद में उसे नागराज वासुकी ने दर्शन दिए और विश्वास दिलाया कि वह चिन्ता न करे और वह अपनी पगड़ी कुछ ढीली पहन कर दूसरे दिन दरबार में चला जाए। दूसरे दिन जब वह दरबार में गया तो सम्राट के सामने पहुँचते ही नागपाल की पगड़ी से भयानक फनियर नाग कूद पड़ा और सिंहासन की ओर बढ़ने लगा। सारे दरबारी भयभीत हो गए और राजा नागपाल से नाग को ले जाने की प्रार्थना की। उसे सोना और चाँदी के अलंकार और चाँदी में मढ़ी आदर (पट्ट) की पोशाक भेंट की गई। जिस दिन राजा भद्रवाह पहुँचा, इस खुशी में तीन दिन तक उत्सव का प्रबन्ध किया गया। इसी से मिलती-जुलती दूसरी दन्तकथा है, पहले दिन दिल्ली में जब सुबह राजा का सेवक शाही कुएं से पूजा के लिए पानी लेने गया तो शाही सेवक और राजा के सेवकों में इस बात पर झगड़ा हो गया कि पहले पानी कौन भरे। राजा के सेवक का कहना था कि वह पूजा के लिए पानी ले जा रहे हैं, इसलिए वह इस पानी को सबसे पहले भरेंगे। यह झगड़ा जब दरबार में पहुँचा तो ऊपर वाली घटना हुई। मुगल समय के लिखित प्रमाणों एवं कागजों में इस घटना का वर्णन नहीं मिलता; परन्तु परम्परा आज तक जीवित है।

बुहलर के अनुसार कश्मीर में प्रत्येत नदी, झील और तालाब के साथ नाग का नाम जुड़ा है और इनके छोटे रूप को नागी कहा जाता है। प्रत्येक तालाब का रक्षक देव नाग को समझा जाता रहा है।

कश्मीर की एक और प्रसिद्ध झील वूलर की जलात्मा महापद्मा नाग को समझा जाता है। कहते हैं एक बार द्राविड़ जादूगर कश्मीर आया और दावा किया कि वह छोटे-बड़े सभी नागों को पकड़ सकता है। राजा ने जब उसे ऐसा करने को कहा, तो उसने अपनी मंत्रशक्ति और जादू का प्रभाव फैलाना आरम्भ किया। सभी नाग जादू के जोर से उसने पकड़कर मार दिये। अब महापद्मनाग की बारी आयी। इस नाग ने कश्मीर के तत्कालीन शासक से सपने में जादूगर के चंगुल से छुटकारा दिलाने की प्रार्थना की। इस उपकार के लिए उसने उसे सोने की खान दिखाने का वायदा किया। जिस झील में नाग रहता था उस झील का पानी जादू के प्रभाव से जब सूख गया तब राजा ने जादूगर को अपना जादू

बंद कर देने की आज्ञा दी। राजा ने जिस रूप में सहायता की, नाग उससे अधिक प्रसन्न न था। इसलिए उसने सोने की जगह चाँदी की खान दिखाई। परन्तु उस झील में अब तक उसकी उपस्थिति समझी जाती है और हिन्दू लोग नागपंचमी के दिन वहाँ अवश्य पूजा करते हैं।

हिमाचल प्रदेश में नाग-पूजा-परम्परा

हिमाचल प्रदेश में नागपूजा कब से प्रारम्भ हुई, यह स्पष्ट करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र में बहुत प्राचीन काल से नागपूजा परम्परा चली आती है और यह देश की परम्परा से अलग नहीं बल्कि उसी का एक अभिन्न अंग है। इस पहाड़ी प्रदेश में आज भी ऐसे सैकड़ों मंदिर मिल जायेंगे, जिनमें नाग और नागनियों की स्थापना की गई है और ग्रामीणवासी श्रद्धा से आज भी देवरूप में उनकी पूजा करते हैं। मंदिरों के अतिरिक्त छोटे-बड़े ऐसे अनेक स्थल हैं, जो इन्हें समर्पित हैं। इन ग्रामीण मंदिरों में स्थानीय जनता किसी मनौती के लिए, किसी कार्य की सिद्धी के लिए, कोई परम्परा निभाने के लिए, किसी आपत्ति से बचने के लिए, फसल या वर्षा के लिए, किसी कष्ट को दूर करने के लिए और मन की शांति के लिए समय-समय पर जाती है। नाग देवता को अपने घर यज्ञ पर लाते हैं। मेला या अन्य उत्सव में उन्हें बुलाते हैं। यही नहीं, जब पहली बार गाय दूध देने लगती है, घर में कोई विवाह हुआ हो, पहली फसल आयी हो या अन्य कोई कार्य हो, तो इन देवी-देवताओं के लिए दूध, घी, अनाज और पैसे भी पुजारी के हाथ पहुँचाए जाते हैं। कहीं-कहीं इन्हें फूल और धूप के अतिरिक्त बकरा या मेंढा भी बलि चढ़ाया जाता है।

नाग देवी-देवता के मंदिर गाँव में, प्रायः सब से ऊँचे शिखर पर बने होते हैं। कहीं-कहीं ये मंदिर गाँव के पास जंगल में वृक्षों से घिरे रहते हैं। कहीं चौकोर आकार में पत्थरों और लकड़ी के सुन्दर चबूतरे बने होते हैं और ढलवां छत खम्भों पर खड़ी रहती है। इन में लकड़ी के खम्भों पर या पत्थरों पर नाग की मूर्तियाँ खुदी होती हैं। नाग देवता का मुँह प्रायः मानव की तरह परन्तु सिर पर ताज के साथ-साथ नाग के फण बने होते हैं। जनता में यह भी धारणा रहती है कि नाग देवता कभी-कभी श्रद्धालु भक्तों को साँप के रूप में दर्शन देते हैं, लेकिन लोगों का विश्वास है कि नागों का रंग अन्य साँपों से बिलकुल भिन्न होता है।

नाग देवी-देवता की पूजा के लिए एक पुजारी, एक चेला (जो जरूरी नहीं

कि हर जगह ब्राह्मण जाति के ही हों) नियुक्त होते हैं। पुजारी प्रति-दिन पूजा करता है, परन्तु चेला प्रायः यज्ञ, हवन, विशेष पूजा, सक्रांति उत्सव पर ही श्रद्धालुओं के आग्रह पर मंदिर में आता है। मेला या उत्सव के दिन न केवल पुजारी और चेला ही अपितु अन्य पड़ोसी ग्राम के देवी-देवता भी नाग देवी-देवता के पास आदर भाव प्रकट करने आते हैं। उनके साथ उनकी मूर्ति, पालकी, छड़ी और अपने-अपने साज-संगीत सभी आते हैं। इन नाग-देवता के निजी और ग्रामीण नाम होते हैं। कभी उन्हें अपने नाम से, कभी उस स्थान विशेष के नाम से जहाँ जनश्रुतियों के अनुसार उनका जन्म हुआ था, पुकारा जाता है। कई जगह पर पौराणिक नाम बिगड़कर रह गए हैं; जैसे वासुकी का वासकी, कालिया का कालू इत्यादि।

हिमाचल प्रदेश में नागों की उत्पत्ति के साथ भी अनेक लोकगाथाएं प्रसिद्ध हैं। ऐसे प्रतीत होता है कि सिन्धु घाटी के अन्तिम चरण तक हिमाचल क्षेत्र में नाग नामक एक जनजाति भी निवास करती थी, जिसकी जातीय विशेषताएं किन्नर तथा किरात जातियों के सदृश ही थीं। नेगियों और नागों का कभी परस्पर कोई गहरा जातीय सम्बन्ध रहा होगा। ऐसा लगता है कि नाग जाति के लोग पहले मैदानों में तलहटी में रहते थे। इन्हीं में से कुछ धीरे-धीरे पहाड़ों की ओर भी आए। मंदिरों में नाग देवता को शासक के रूप में पूजा जाता है। इन नागों की मूर्तियाँ मानव आकृति की हैं, जिनके चारों ओर नाग खुदे हैं। आर्यों के आने पर नाग जाति के साथ संघर्ष के फलस्वरूप उन्हें वादियों और पहाड़ों की ओर खदेड़ दिया गया। आज हिमालय के इस क्षेत्र में नाग जाति के लोग नहीं रहे परन्तु नाग-पूजा आज भी अन्य देवी-देवता-पूजा के साथ जीवित है। आज भी कई जगह पर ऐसे मंदिर या अवशेष मिल जायेंगे, जिनमें नाग देवता की शिवलिंग के रूप में पूजा होती है। इन शिवनाग मंदिरों द्वारा ही हिमाचल में प्रागैतिहासिक सिन्धु सभ्यता की शिव शक्तिपूजा की झलक मिलती है।

नाग उपासना प्रायः सभी पर्वतीय भागों में अब तक प्रचलित है। हिमाचल प्रदेश में असंख्य मन्दिर, तीर्थस्थान, चश्मे, बावड़ियाँ, तालाब, वन और झीलें आदि नागों से सम्बन्धित हैं, जैसे नाग देऊ, नागो रा देहरा, नागो रि नगोण या नगोणी, नाग बोण, नागड़ू री धार, नागो री नाली, नागोरा सौर, नागबन, नाग चोला या नाग चला, नागमी, नगोठी, नागा बाड़ी, नागगोई या नगवाई, भागसू नाग इत्यादि। आदिम जाति के रूप में अब कोई नाग जाति नहीं हैं, परन्तु थोड़े बहुत ब्राह्मण हैं, जो अपने नाम के आगे नाग शब्द लिखते हैं।

यह इतिहास की खोज का विषय है कि प्रागैतिहासिक काल में किन्नर, किरात और नाग ही हिमालय के आदिवासी रहे होंगे। नाग लोग अपनी वीरता

और कला-प्रेम के लिए विशेष प्रसिद्ध रहे। हिमाचल प्रदेश में अनेक स्थानों के नाम नागों से जुड़े हुए हैं। इस पहाड़ी प्रदेश के अनेक जलस्रोतों, पानी के चश्मों, तालाब, चबूतरों और बावड़ियों पर नागों की पाषाण मूर्तियाँ सहज ही देखने को मिल जाती हैं, जो लोक-परम्परा, विश्वास और लोककथा के समन्वय को स्थापित करती हैं।

नागपंचमी का त्योहार हिमाचल प्रदेश में भी श्रावण मास के शुक्लपक्ष की पंचमी को मनाया जाता है। अनेक जनपदों में इसे रिखी और बिरूड़ी पंचमी के नाम से भी अभिहित किया जाता है। स्पष्टतः महादेव नागेश्वर के रूप में उभरते हैं। शिवलिंग के ऊपर नागफणों को छत्र के रूप में अलंकृत किया गया है। घर की स्त्रियां बरामदे या भीतरी दीवार के एक छोटे भाग में मिट्टी या किसी रंग में पांच, सात या नौ नागों की आकृतियां बना देती हैं। मण्डी, बिलासपुर और कांगड़ा जनपद में इस प्रयोजन के लिए सफेद मिट्टी का ही प्रयोग किया जाता है। कई जगह गोबर की आकृतियां बनाई जाती हैं। इन आकृतियों के आगे दीपक जलाए जाते हैं और आरती उतारी जाती है। नैवेद्य के रूप में अधिकांशतः भीगे हुए चने, मटर आदि का प्रयोग होता है। कोई स्त्री या पुरुष नाग देवता की कथा सुनाएगा। उस दिन लोग हल नहीं चलाते। इस दिन कुछ किसान अपने खेतों से सब्जी तथा अन्य फसल निकालना उचित नहीं समझते।

कुछ जगहों पर दीवाली के बाद भी नागपूजा की जाती है। गोबर की नाग मूर्ति बनाई जाती है और उसे पूजा जाता है। उस दिन जीवित सांप के दर्शन अशुभ माने जाते हैं। यदि कहीं सांप निकल आए तो उसे न्यूगड़ा यानी कृतघ्न कहकर मार दिया जाता है। लोक-आस्था है कि दो सांपों को आपस में लिपटा हुआ देखना बड़ा अपशकुन समझा जाता है। यह किसी आने वाली विपत्ति का संकेत समझा जाता है, तब देखने वाला ग्रह टालने के लिए किसी धातु का सांप बनाकर ग्राम देवता के मंदिर में भेंट कर आता है। हिमाचल के अनेक मंदिरों के द्वार या दीवार के साथ प्रायः चांदी, लोहे, तांबे आदि धातु के बने पक्षी और सांप लटके हुए देखने में आते हैं।

हिमाचल प्रदेश में भगवान आशुतोष के बाद नाग की पूजा होती है। जो लोग शिवभक्त हैं, वे नागपूजक भी हैं। जहाँ नाग-पूजा ने स्थानीय रूप धारण कर लिया, वहां शिवपूजा का विधान अभी तक शास्त्रीय ही है। हिमाचल के इन नागों की प्रकृति कल्हण द्वारा 'राजतरंगिनी' में वर्णित नागों से बिलकुल मिलती-जुलती है।

हिमाचल के इन असंख्य नाग मंदिरों में से केवल कुछ मंदिरों में ही प्रति दिन सुबह-शाम पूजा होती है और उनका पुजारी गुरु या माली भी होता है।

शेष मंदिर या तो भग्नावस्था में पड़े हैं या संक्रांति के दिन ग्रामीणवासी धूप-दीप से पूजा करते हैं। इन कुछ नागों के गांव में प्रति वर्ष या प्रति तीसरे वर्ष मेले जुड़ते हैं। इन मेलों पर ग्रामवासी अपनी रंग-बिरंगी पोशाक में मेले में आकर अपने ग्रामदेवता के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं। इन मेलों में लोग अपने नाग देवताओं को रथ या पालकी में उठाकर मेले के मैदान में ले जाते हैं। लोक-वाद्यों की धुनों पर लोकनृत्य एवं लोकगीत गाते हैं और विशेष पूजा करते हैं। प्रत्येक नाग का व्यक्तिगत नाम होता है, जिसकी उत्पत्ति और अर्थ कई मामलों में अस्पष्ट है। कुछ नागों के नाम गांव पर पड़े हैं, जहां उनके मंदिर हैं। कुछ नागों के नाम उत्पत्ति से पौराणिक हैं, परन्तु स्थानीय रूप में बिगड़े रूप में प्रयुक्त होते हैं, जैसे वासुकी का बासक नाग, काली नाग का कलुवा नाग।

हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में एक-दो ऐसे व्यक्ति भी मिल जाएंगे, जिन पर सर्प के डंक का प्रभाव नहीं हो पाता। एच० ए० रोज ने कांगड़ा में एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है, जिसे एक विषैला सर्प वर्षाऋतु में प्रतिवर्ष डसता था। पहली बार जब उसे एक कोबरा सांप ने डस लिया तो उसने कुटियारी दा गूगा मंदिर में गूगा से प्रार्थना की, उससे वह ठीक हो गया। ऐसे व्यक्ति में विचित्र-सी गंध आती है और काटने का समय आने पर उस पर नशा-सा छा जाता है। इस डसने से वह कुछ दिनों में ठीक हो जाता है। ऐसा विश्वास है कि जो सांप डसता है, वह सांपनी होती है लेकिन जो संखिया लिया जाता है, वह प्रभावशाली रोग-निरोधक होता है।

लोगों में ऐसा भी विश्वास है कि सांप शीत निद्रा में चले जाते हैं। यह यहाँ के रिवाज से भी पता चलता है। दीवाली के बाद कई जगहों पर प्रतिवर्ष नवम्बर में नागपूजा का त्योहार मनाया जाता है, जिसके द्वारा शीत के लिए विदा किया जाता है। कई लोग दीवाली के अवसर पर उपयोग किये गये दीपक को अपने घरों में ले जाते हैं ताकि अगले छः महीनों के लिए सांप डरकर भाग जाएं। तीव्र सुगंधि वाला चूहरी सुरेश या चूरी सरोण घरों में सांपों को भगाने के लिए रखते हैं। लोगों की ऐसी भी धारणा है कि मरते समय व्यक्ति को दूध नहीं पिलाना चाहिए, क्योंकि उससे वह अगले जन्म में सांप बन जाएगा।

कांगड़ा क्षेत्र में एक अन्य देवता नाग पंडोह की पूजा भी होती है। किसी भी धार्मिक या अन्य संस्कार के प्रारम्भ में नाग पंडोह की पूजा होती है। लेकिन नाग पंडोह का मंदिर कहीं पर भी नहीं मिलता। पांच-सात गांवों के मध्य नाग पंडोह का पवित्र स्थान अवश्य मिल जाता है। प्रायः खण्डों के किनारे या निर्जन स्थान पर अवश्य लम्बे-चौड़े पत्थर के साथ भगवे रंग के कुछ झंडे लगे मिल जाते हैं। बड़े पत्थर के नीचे छोटे-मोटे पत्थरों पर सिन्दूर

पड़ा मिलता है। फूल, चावल और बच्चों के मुंड-नसंस्कार के बिखरे बाल इस स्थान के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं। नाग पंडोह की स्थापना कब हुई, यह कौन देवता है—इन प्रश्नों का उत्तर किसी से भी नहीं मिलता।

इन पहाड़ों में नागपूजा सम्भवतः बौद्ध धर्म के प्रवेश से पहले विद्यमान थी। धीरे-धीरे समय पाकर बौद्ध धर्म पर भी इस मत का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ और आदिमानव के मतों के प्रति सहिष्णु बने। परन्तु बौद्ध धर्म के पतन के बाद भी नागमत अपने वास्तविक स्वरूप में जीवित रहा। इस पर राज्य द्वारा स्वीकृत धर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

कई स्थानों पर नाग को दानव भी कहा जाता है। कुल्लू में इन्द्रधनुष को बुड्ढी नागिन कहकर पुकारा जाता है। इससे नाग के वर्षा का देवता होने के प्रमाण मिलते हैं। चम्बा जनपद में श्वेत रंग के नाग कभी-कभी दीवारों में से निकलते हैं और दूध पीते हैं। कहते हैं दोमूहा नाग जिसे एक बार काट दे, उसे वह दूसरी बार भी काटता है।

हिमाचल प्रदेश में महासू या मासू, वासुकी, भटौतादि नागों की पूजा का भी प्रचलन है। शिमला के अधिकांश भाग में, विशेषकर वह भाग जो उत्तर प्रदेश के जौनसार-बावर क्षेत्र के साथ लगता है, महासू की पूजा का प्रचलन है। महासू की परम्परागत गाथा-गीत अनुसार कश्मीर से भूमिगत उत्पत्ति बताई जाती है और उसी तरह जुब्बल, रोहड़ु तहसील से संलग्न उत्तर प्रदेश की सीमा हनोल ग्राम में महासू का प्रमुख प्राचीन शैली का मंदिर भी विद्यमान है। वास्तव में महासू देवता का सम्बन्ध नाग जाति से भी है।

चम्बा जनपद में नाग

चम्बा में अनगिनत नाग मंदिर हैं और कुछ नागनियों के मंदिर भी हैं। इन मंदिरों में मानवरूप के मुहरें हैं, जिनमें साँप लिपटे हुए हैं। या मुकुट के साथ नाग फण हैं। कई मंदिरों में पाषाण या लोहे के साँप बने हुए हैं साथ में त्रिशूल, दीपक, धूपस्थान, गुर्ज, शांगल भी रखे होते हैं। पानी के स्रोत इस नाग के नियंत्रण में समझे जाते हैं। ये नाग-मंदिर किसी वृक्ष के समीप बने होते हैं। मंदिरों के साथ वृक्षों को काटा नहीं जाता। मंदिर प्रायः लकड़ी और पत्थर के बने होते हैं। यह धारणा है कि नागों के अधिक मंदिरों का निर्माण चम्बा के राजा भूशावर्मा के समय हुआ, परन्तु कुछ मंदिर उससे भी पुराने हैं। तीन में से दो मंदिर महल नाग के और एक बैनी में जमुन नाग का बहुत पुराने हैं, जो बरनांटा परगना के राणा के समय निर्मित हुआ था। चम्बा के प्रसिद्ध नागों की सूची इस प्रकार है—

सदर और चूराह निम्नलिखित नागों की पूजा होती है—

क्रम	नाम	ग्राम	परगना
1	बलोदर	नबी बनी	
2	मलून	अल्वास	
3	स्तोही	बकुन्द	
4	दाखला	छम्पा	
5	क़ालू	सरनागरी	तीसा
6	कालू, कलूथ	धार	
7	महल	गुफा, जंगल	
8	भुजगर	जांगल, भुंजरेरन	
9	कालंग	जांगल, काल कुंडी	

10	महल		
11	जमन		
12	जमोरी	बनी	बरनोटा
13	छलासार		
14	खण्डवाल		

15	थैनंग	दिरोग	
16	कालाँग	मंगलाना	
17	महल	सारू	
18	सरवाल	मुंदल	
19	तारेबान	लुखं	लोहटिकरी
20	हिम	माहबा	
21	हिम नाग	भरारबीं	
22	काल	बाहरारा	
23	भडारी	बटरुडी	
24	श्री बुद्धू	लम्होटा	
25	बबातेर	भिबान	
26	बलोदर	गमहिर	
27	लरहासन	शलाई	
28	छलासार	साहु	
29	कालन	चिल्ली	हिमगरिन
30	मन्डाल	चन्दरोला	
31	स्थूल	खगू	
32	परभूत	अन्डबास	
33	स्थलनी	सुदला	
34	दयातन	दयातन	
35	महर	मगलाना	
36	कालू		
37	मानोबर	भराड़ा	
38	महल	बहनोटा	लोहटिकरी
39	नन्दायासुर	पधरा	
40	बुजिर	जुंथ	
41	थिंग	सातुन	

42	थेनंग	गुसयस	साई
43	महल	भोरास	
44	महल	भैरू	
45	थेनंग	दगरान	बैरा
46	मूथल	गुलेरा	
47	कालू	बरालू	
48	थेनंग	खरोंथ	
49	प्रधान	कुंडियारा	जसौर
50	थेनंग	बहनोटा	
51	हिम	तलहाना	
52	मुन्डौलू	सिरहा	जसौर
53	पज, महल	बजौंथ	
54	बलोदर	जगूल बनी	
55	महल	"	कोहल
56	सिन्धु	सुन्धार	
57	टौनो	पुखरी	तरियोड
58	बजौग	सिरहा	राजनगर
59	बलोदर	बलद्रुनी	खरोंटी
60	महल	तलाइ	
61	बरार	बरूनी	धुंध
62	करांगर	सिनुर	
63	सुधुन	सूई	गुदियाल
64	मेड़ू	घाट	भलेई
65	"	गंड	"
66	महल	जमचर	बंद बगोर
67	थेनंग	घड़ी, घुरबां	साई
68	सुगल	गुलेला	
69	महल	खंडी	
70	कलान	बनी कलोडल	
71	सागटा	सगवारी	
72	सर	सरसारा	जुहुंड
73	सर	बनी सरोई	
74	सुरमेर	जस्सू	
75	महल	भवादान	भांदल

76	करवार	चौतैद	
77	मरार	चरेतर	भांदल
78	सुवाना	भरोगा	
79	महल	चखुतर	किहर
80	खुल	बनी भूतां	
81	परहू	सगां की बनी	
82	चरस	टिकरी, सिरू	मंजिर
83	गुलधन	मंजिर, बहिसालौ	
84	थेनंग	चखरा	मांदल
85	तुंदी	उथलुगा	बधाई
86	जम्मू	जम्मूहर	
87	जम्मू	वर्री दो	
88	मलुन्दू	मलुंद	
89	खल्लार	खाल्लरू	
90	दित्तू	खद्दार	पंजला
91	सुरजू	गुद्दा	
92	राह	राह	
93	जम्मू	भाला	
94	दरोबी	चलाई	साहु
95	दूरबदू	भिधर	
96	बुधू	लंगेरा	भांदल

भरमौर क्षेत्र

1	बदयाला	औराह	भरमौर
2	बासक	धार या बासकाहर	समरी
3	बासकी	सर	लिल
4	बासन	धारा सा बासकाहर	समरा
5	बिजकू	महला	महला
6	बजुरू	त्रेहटा	त्रेहटा
7	दिग्धनपाल	बेगूला	महला
8	धनाहोहू	घरहर	भरमौर
9	दिग्धू	बरग्रान	भरमौर
10	गुलधार	पुलनी	भरमौर
11	इन्द्रू नाग	समरा	कोठी रनहू

12	इन्द्रू नाग	उराई	कोठी रन्हू
13	,,	सुनाओ	चनोता
14	,,	लामू	,,
15	,,	कुवरिसी	
16	,,	थाकला	कोठी साहू
17	,,	सुलखर	भरमौर
18	कलिहर या कैलाँग	कुगती	,,
19	कुथरहू	छोबिया	,,
20	,,	पालनी	,,
21	कैलाँग	कालाह	त्रेहता
22	लाटू	पंजसाई	भरमौर
23	महल	रचना	लिल
24	,,	भीनया	महला
25		कुलवारा	बाकान
26	परोहल	मापल	लिल
27	पुनू या इन्द्रू नाग	सुतकर	त्रेहता
28	सन्दोहला	गावारी	भरमौर
29	हमासी	बागरा	महला
30	सेहरा	सिनेर	सामरी
31	सतूहर	तुर	बसू
32	,,	शिरकरौना	लिल
33	,,	बादला	लिल
34	खगहर	कुँडी	बसू
35	उमान	बालानदरेदिवासी	कालांदरा

पांगी क्षेत्र

नाम	ग्राम	परगना	
1	दान्ती		
2	कासिर	दरवास	दरवास
3	बेसिर		
4	बनेक देव	सुराल	,,
5	देत	किलार	किलार
6	जगेसर	साच	

7	परोर		
8	माल	हेलोर	साच
9	जरयून	कुताल	
10	दिगल पानिहर गिसाल		
11	कुटासन		
12	बिरू	सालही	
13	जतरुन		
14	दौसर	मछिप	
15	करन	हेलू	
16	काननू	रैं	
17	चनिर	परमौर	साच
18	बाम्बो	शार	
19	किदारू		
20	अजोग	अजोग	

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट हो जाता है कि हिमाचल प्रदेश के अन्य जनपदों की अपेक्षा चम्बा में नागपूजा का अधिक प्रचलन है। स्थानीय लोग सूखा या अकाल, मनुष्य या जानवरों में बीमारियां फैल जाने पर या व्यक्तिगत कठिनाई के समय मंदिर में जाते हैं और विशेष पूजा करते हैं। कई बार भेड़-बकरियों की बलि भी दी जाती है। पांगी क्षेत्र में महीने भर, सावन में गाय का दूध, नाग को भेंट किया जाता है। तभी वह शुद्ध समझा जाता है।

इनमें से कुछ अधिक प्रसिद्ध नागों के बारे में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। कहते हैं चम्बा का प्रसिद्ध नाग वासुकि या बासकी नाग जम्मू के भद्रबाह क्षेत्र से दो सौ वर्ष पूर्व लाया गया था, क्योंकी चम्बा के पशुओं में बीमारी फैल गई थी। इसी तरह बासन नाग और नागनि को भी भद्रवाह से और दिग्धू नाग को पांगी से लाया गया था। फलस्वरूप पशुओं में फैली बीमारी दूर हो गई थी।

जैसे पहले कहा गया है कि तक्षक नाग को हिमाचल प्रदेश में इन्द्रूनाग के नाम से कई जनपदों में चम्बा, मंडी और कांगड़ा में पूजा जाता है। इन्द्रूनाग का सम्बन्ध इन्द्र से इसलिए जोड़ा गया है कि सर्प-यज्ञ के समय तक्षक नाग इन्द्र के आसन के साथ लिपट गयाथा, परन्तु मन्त्रशक्ति के बल से इन्द्रासन यज्ञ के हवनकुंड की ओर उड़कर गिरने लगा। तब वासुकी की सहायता से वह बच गया। परम्परा के अनुसार इन्द्रनाग सुकेत(मंडी)के राणा का गृहदेवता माना जाता था। युद्ध के समय जहाँ-जहाँ यह राजा गया वहाँ उसने इस नाग के मंदिर बनाए और पुजारी बढ़ा दिए। इन्द्रनाग के एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में साँकल है।

कलिहर नाग, जिसे प्रायः केलांग नाग से जाना जाता है, का मूल निवास लाहौल में ही माना जाता है। कई सौ वर्ष पूर्व कुगती के लोगों ने उसे तब लाया, जब वहाँ जानवरों में बीमारी फैल गई थी। वहाँ के लोगों ने उसके लिए मेला लगाने की शपथ उठाई, यदि बीमारी हट जाये। परम्परानुसार कैलांग एक साँप के रूप में एक मेंढे के सींगों पर लाहौल से आया और दुधी के स्थान पर रुका, जो वर्तमान मंदिर से दो मील की दूरी पर है। तीन पुश्तों तक वहाँ ठहरने के बाद, नदी स्रोत के पास ऊंची जगह पर दारुन स्थान पर चला गया। यह जगह अत्यंत ठंडी और पहुंचने के लिए अत्यंत कठिन थी। लोगों ने चेला द्वारा नाग से नीचे उतरने की प्रार्थना की। नाग ने चेला द्वारा कहा कि वे उस जगह से लोक वाद्य भाणा फेंके, जहाँ वह रुक जाए, वहाँ उसके लिए एक मंदिर बना दिया जाए। वहाँ बुनियाद खोदते समय उन्हें पाषाण की त्रिमुखी प्रतिमा मिली। जब उन्होंने उसे उठाया, तो वहाँ से एक चश्मा फूट पड़ा। इस मूर्ति में नाग पद्मासन में बैठे हैं। चम्बा के राजा श्री सिंह ने मंदिर के लिए एक दूसरी अष्टधातु की मूर्ति भेंट की, जिसके दाएं हाथ में लाठी है। इसके सिर पर साँपों की शक्लें बनी हैं। इसके गले में चकलास का हार, जनेऊ, तरागी और वस्त्र पर सभी साँपों के रूप बने हैं। यह मंदिर माघ संक्रांति से लेकर बैसाख संक्रांति तक बंद रहता है।

पांगी में किलार के स्थान पर दैतनाग की पूजा होती है। पहले वह लाहौल में रहता था, जहाँ कभी इसे मानव-बलि भी दी जाती थी। कहते हैं एक बार एक बूढ़ी विधवा के इकलौते बेटे के बलिदान की बारी आ गई और वह जोर-जोर से चिल्लाकर रो रही थी। अचानक एक गद्दी ने उसके रोने की आवाज सुन ली। उसने सारी व्यथा सुनकर स्वयं को उसके स्थान पर जाने के लिए कहा। उसने यह शर्त लगा दी कि नाग उसे सारा हड़प कर दे और जब उसने शरीर के प्रत्येक भाग बारी-बारी देने प्रारम्भ किये और उनको नाग ने कुछ नहीं किया, तो उसे क्रोध आ गया और उसने नाग को चन्द्रभागा नदी में फेंक दिया। किलार के स्थान पर, वह नदी से बाहर निकला। वहाँ से उसकी प्रतिमा एक ग्वाला पीठ पर उठाकर वर्तमान मंदिर के स्थान तक लाया, जहाँ उसकी पीठ से प्रतिमा मुँह के बल नीचे गिरी। पीठ बाहर की ओर थी। वहाँ मंदिर बनाया गया और पीठ दिखाती हुई मूर्ति इसमें स्थापित की गई। इस मंदिर के चारों ओर देवदारू के वृक्ष उग आए।

कथुरा नाग का सम्बन्ध दालों से और सन्धोला नाग का सम्बन्ध जौ से जोड़ा जाता है। नाग को खाण्डा और कुंडी भेंट की जाती है, जिन्हें मंदिर के पास रख दिया जाता है। कभी-कभी भेड़ की बलि दी जाती है।

चम्बा नगर में कालिया नाग का एक पुराना मंदिर है, जिसमें कालिया नाग की बड़ी मूर्ति स्थापित की गई है।

चम्बा जनपद में कृष्णलीला मुसाहदे नामक लोकगीतों में गायी जाती है। इन मुसाहदों को गाने वाले भी मुसाहदे ही कहलाते हैं। इन्हीं मुसाहदों में एक प्रसिद्ध लोकगीत श्रीकृष्ण द्वारा नागमंथन भी है :

नाग मंथने जो आए जी, फूंक मारी कालीहर नाग जी,
श्याम रंग भगवान कुंडीहथ बीच लेई जी।
मुंडी पेरा हैठ लेई नाग नथी लए जी;
नागनी खड़ी होई पति की मेरे जान रखो जी।

कहते हैं चम्बा के राजा आनन्दवर्मा (1475 ई०) का विवाह काँगड़ा के राजघराने से हुआ था। एक बार जब वह अतिथि बनकर काँगड़ा आए तो वहाँ राजा ने उसकी दैवी शक्ति की परीक्षा-हेतु भोजन मेज़ पर परोसा, और उसे दूर रखा गया। उस पर एक तीन मुँह वाला जग (मुसरबा) रखकर राजा ने अपना चमत्कार दिखाया। एक-एक कर भोजन की मुँहमाँगी वस्तु उठकर स्वयं राजा के पास आ जाती। पानी पीते समय राजा की नाक से दो नाग निकले, जिन्होंने जग के अन्य दो मुखों का प्रयोग किया। इससे आनन्दवर्मा पर नाग भक्ति का चमत्कार स्पष्ट होता है।

चम्बा ही क्या, हिमाचल प्रदेश में सब जगह नाग देवता वर्षा लाएगा, गाय दूध देगी, बछड़ा हल चलाएगा। नाग की पूजा में लस्सी, दूध और घी होता है। प्रथम बार दूहा गया दूध, प्रथम बार छोली छाछ और प्रथम बार तैयार किया घी यदि नाग देवता की भेंट नहीं हुआ तो गाय-बछड़े पर अवश्य प्रकोप होगा। नाग देवता के लिए घी का पारू भरकर रखा जाएगा। परिवार में तब तक घी और दूध का प्रयोग नहीं होगा, जब तक नाग देवता के मन्दिर में जा कर घी से उसका पूजन नहीं किया जाता, चाहे आठ मील दूर का सफर करके यह कार्य पूर्ण क्यों न किया जाए। कभी-कभी गृहिणी अथवा घर का बड़ा सदस्य महीनों घी का प्रयोग नहीं करता, जब तक पूजन नहीं किया जाता। तब तक भोजन नहीं किया जाता है, जब तक घी नहीं चढ़ाया जाता। छाछ प्रयोग में कर ली जाती है। बाकी सारा परिवार उस दिन से दूध और घी का प्रयोग आरम्भ कर देगा जिस दिन से नाग देवता का घी पवित्र स्थान पर उठाकर रख दिया जाए।

प्रत्येक नाग की अपनी चरागाह है और उसे क्षेत्र विशेष का राजा माना जाता है। लेकिन वासुकी नाग की चरागाह में चरने वाली गाय मासु नाग की सम्पत्ति भी हो सकती है अतः मासु नाग को मानना जरूरी होगा।

नाग देवता अधिकतर शाकाहारी होते हैं। बहुत कम नाग माँसाहारी होते हैं। जिस मन्दिर का नाग देवता माँसाहारी होगा उसे नर-भेड़ की बलि दी जाती है। अन्य नागों का पूजन घी, छाछ और दूध से किया जाता है।

नाग देवताओं के मन्दिर ऊँचे टीले पर पहाड़ी शैली में बने होते हैं। इन में कुछ में कलात्मक और कुछ में साधारण मूर्तियों का समावेश है। नाग को साँप की तरह रेंगता हुआ दर्शाया जाता है। किसी-किसी मूर्ति में नाग देवता को मानवाकृति में आसपास सांपों से घिरा बताया गया है। लोहे की शलाकाओं और पीतल और चाँदी से बने साँप भी मन्दिर में रखे गये हैं। लकड़ी पर भी नाग की मूर्ति चित्रित हुई है। कुछ मन्दिर भव्य है, जिससे गर्भ-गृह और प्रवेश-द्वार का निर्माण हुआ है। इस प्रकार के मन्दिरों में गुप्तकालीन मूर्तिकला का सुन्दर स्वरूप मिलता है। परगना लिहल के पर्वत-शिखर पर इसी प्रकार का वासुकी नाग का मन्दिर अपना भव्य रूप लिये हुए है। मन्दिर के बाहर पत्थर की नंदी मूर्ति अपना आर्कषण लिये है। मन्दिर खुले मैदान में है। इस नाग के पूजन के लिए दूर-दूर से श्रद्धालु लोग आते हैं।

धीरे-धीरे स्थानीय देवी-देवता के प्रति श्रद्धा की कमी के कारण, मंदिर ध्वस्त होते जा रहे हैं। सामाजिक परिवर्तन के कारण गांव-गांव में बने मंदिर खंडहर बनते जा रहे हैं।

कुल्लू जनपद में नाग

इस क्षेत्र के लोगों में धार्मिक विश्वास के इर्द-गिर्द ही लोकजीवन घूमता है। आज भी देवी-देवताओं की पूजा पहले की तरह ही की जाती है। इस क्षेत्र में अन्य देवी-देवताओं के साथ नागों की पूजा भी की जाती है। कुल्लू की सोलंग, व्यास और सवेरी घाटियों और वजीर-रूपी और सिराज क्षेत्र में अनेक मंदिर हैं। इन मंदिरों में काष्ठकला के सुन्दर नमूने मिलते हैं। मंदिरों के प्रवेशद्वार पर नागों की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। कहीं-कहीं नाग की लोहे की मूर्तियाँ भी बनाई गई हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार किलनारों के साथ-साथ नाग भी इस प्रदेश के आदिवासियों में से थे। कुल्लू में शायद ही कोई उपत्यका हो, जहाँ कभी नागों की बस्तियाँ न रही हों। प्रायः सभी गाँवों या परगनों में नागों की पूजा की जाती है। इन नागों का उल्लेख अनेक लोककथाओं, लोकगीतों, लोकविश्वासों एवं लोक-परम्पराओं में भी मिलता है। भारत के अन्य भागों की तरह हिमाचल में नाग जाति भी थी, जो अब नहीं रही। परन्तु नाग उपासक लोग अब भी हैं। कुल्लू के प्रसिद्ध नाग और उनके मंदिरों के कुछ स्थान निम्नलिखित हैं :

1 वासुकी	हलाण, नारायण डेरा
2 शिरधन	भनारा, जगतसुखू
3 धुम्मल	हलाण, कटराइ
4 कुमरदानु	व्यासर
5 काणा, गोशली	गोशाल
6 पीउला (गौतम रिखी)	बटाहर
7 कालीया	शिरढ़
8 बाहुड़	नगर
9 फाहली	फाहला नाला
10 राई	दथुआ
11 नात्री	रामगढ़ कण्ढी
12 नौनाग	सरपारा

13 बूढ़ीनागन — ग्याधी (खिराज)
14 कालीनाग — रायसन कोठी, मंढलगढ़
15 सामू — राल्हा
16 जड़नाग — फाटी हुनन
17 महिनाग — ढ़ागी (आँनी)
18 बलूनाग — चेथर (सिराज) बाछूगोहर
19 महिटी — काइस
20 रूद्र या लुद्र — मणिकरण (से 11 मील)
21 हक तमोरी — दउगी सिराज
22 चम्मू — ''
23 कठेड़ी — दलाश
24 छमाँह — भूगा, गोपालधर
25 कण्ढी — कई कण्ढा, श्रीगढ़, कोटाधार, कानार शैयुली
26 माहूरी — माहरी
27 कितना — किरथा शैयुली (सिराज)
28 शखनाग — कउली बाग, राहवाली, रूपा
29 खर्गस नाग — खगस
30 तानदेव — प्लीई फाटी
31 बदी नागन — सिराज
32 शरशाई — शरशा
33 चमाउ — कालीबान देवरा
34 पनेजी — पनेआ
35 टकरासी — टकरासी मिथरासी
36 छत्रीनाग — शुदा
37 साग — सागखोल
38 किर्यानी — किर्यानी
39 तुरू — तुरू
40 भलोगू — डेरा भलोगीभाल
41 जलसू — जलसे
42 रामनुन — रामनुन
43 शुक्ला — शुक्ला
44 जाहरन — हुनण
45 कमोरी — राहणु

46	नागण	फाटी
47	नीभी	फाटी गियाधी
48	तनणू	हुनन
49	जहरू	सरघा
50	येउना	शगान
51	तराली	तराला
52	माहू	ठोगी
53	कुई केढ़ा	रागोगी
54	ऋषि	बरुआ

अठारह नारायणों की तरह कुल्लू जनपद में अठारह नागों की कथा भी लोकप्रिय है, जिससे अनेक स्थानीय कथाओं ने जन्म लिया है।

बहुत पुरानी बात है, मनाली के उत्तर में एक गाँव में एक सुन्दर कन्या एक दिन अपने घर की छत पर बैठी थी, जहाँ से उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर वासूनाग ने उसका अपहरण कर लिया। एक दिन नाग उस स्त्री की गोद में सिर रखकर सो रहा था, सहसा उसे ध्यान आया कि उस दिन उसके गाँव में मेला हो रहा होगा। घर की याद से उसकी आँखों में आँसू आ गये। आँसुओं की कुछ बूँदें वासुकी नाग पर भी गिरीं। इस पर नाग की नींद खुल गई। उसने स्त्री से रोने का कारण पूछा। नाग ने उसे विश्वास दिलाया कि वह चिन्ता न करे। वह उसे तुरन्त गाँव में पहुँचा देगा। गाँव चलने से पहले नाग ने उसे बताया कि कुछ महीने बाद गाँव में वह अठारह नागों को जन्म देगी। उन नागों का भली-भाँति पोषण करने को कहकर उसे गाँव में पहुँचा दिया। कुछ महीनों बाद उस स्त्री ने अठारह नागों को जन्म दिया। उसने तुरन्त उन्हें एक घड़े में बन्द कर दिया और परिवार के अन्य सदस्यों से छिपकर उन्हें दूध और धूप देती रही। एक बार घर की बहू ने उसे ऐसा करते देख लिया। एक दिन जब वह स्त्री किसी काम से बाहर चली गई थी, जिज्ञासावश उसने एक हाथ में दूध का कटोरा और दूसरे में धूप-पात्र लेकर जल्दी से घड़े का ढक्कन उठाया। नागों ने सिर उठाए, तो वह घबरा गई। इस घबराहट में उसके हाथ से दूध और धूप दोनों गिर पड़े। जलती धूप नागों पर गिर पड़ी, जिससे नागों के कई भाग जल गए। फलस्वरूप जलासू का नाग बहरा हो गया। त्रीणी के नाग का हाथ जल गया और गौशाली का नाग काणा हो गया। रायसन का काली नाग जलकर काला हो गया। जो नाग सबसे पहले माँदल के मुँह से सुरक्षित बाहर निकला, वह शिरधन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शिरधन का शाब्दिक अर्थ है—सिर फाँड़। धुएँ से जिसका शरीर कदरे बेरंग हुआ। उसे ही संभवतः धूमल या धूम्बल नाग कहा गया।

कहते हैं, अठारह नाग की भाँदल आज भी गोशाल गाँव के लौंउद परिवार

में विद्यमान है। लाहुल के मरबल गाँव में अठारह नागों का मन्दिर है। परम्परा-नुसार मरबल और ठोलंग गाँव के लोग गोशाल गाँव में आकर गोशली नाग को आदर सहित लाहुल ले जाते रहे हैं। वासुकी नाग का विस्तृत वर्णन 'देवकन्या' की प्रसिद्ध गीत-गाथा में भी हुआ है जिसमें उसे देवकी का भाई माना गया है।

कालिया नाग भी कुल्लू का प्रसिद्ध नाग है, जिसका मंदिर शिरड़ में है। इस कालिया नाग की टक्कर सामने, जाना गाँव के देवता जीव नारायण से हुई बताई जाती है। यह लड़ाई अरछण्डी जगह पर हुई। इस जगह पर काली नाग से उसकी ओड़ी रखी गई है, जिसे काली ओड़ी कहते हैं। नगर में भी देऊनाग है, जिसे बाहुड़ू नाग कहते हैं। नगर की साढ़ी जात्री के अन्तिम दिन इस नाग का मेला लगता है, 'जिसे बाहुड़ू री खेल' कहते हैं। इसी ग्राम में 'नागा रा डेहरू' स्थान है, जहाँ कभी नाग मन्दिर रहा होगा। पानी का चश्मा अब भी है। इस प्रकार 'नागे री नाली' जगह भी है।

सिराज क्षेत्र में चेथर का बालूनाग भी प्रसिद्ध है। इसके प्रकट होने के बारे में कहा जाता है कि एक दिन गाँव की एक बूढ़ी स्त्री अकेली बैठी थी। सायंकाल एक साधु आया और कहने लगा कि उसे भूख लगी है। बुढ़िया ने कहा कि उसके पास और तो सब कुछ है परन्तु रोटी बनाने के लिए ईंधन नहीं है। उस साधु ने लकड़ी लाकर दी। बुढ़िया ने रोटी पकाई और बड़े आदर से अतिथि को खिलाई। सवेरा हुआ तो अतिथि का पता नहीं था। घर के चारों ओर लड़की के ढेर लगे हुए थे। बुढ़िया ने समझ लिया कि ऐसा चमत्कारी साधु कोई देवता ही हो सकता है। उस समय बालूनाग प्रकट हुए और वहाँ रहने की इच्छा प्रकट की। वहाँ पर नाग की स्थापना कर दी गई और धीरे-धीरे 'बालूनाग' की कीर्ति फैली।

सिराज में भूँगा गाँव के चूमाँह नाग को शेषनाग भी कहा जाता है। जन-श्रुति के अनुसार एक ब्राह्मण पहाड़ी नाले में नहा रहा था, तभी वहाँ से एक नाग प्रकट हुआ और उसकी ओर लपका। भयभीत ब्राह्मण भागने लगा तो नाग ने मार्ग रोक दिया। उसने कहा—मैं शेषनाग हूं। यदि समृद्धि और सुख चाहते हो तो मुझे मंदिर में स्थापित किया जाए। ब्राह्मण ने गाँववालों की सहायता से ऐसा ही किया और आज तक मंदिर में उसकी पूजा होती है। इस गाँव के समीप ही दूसरा गाँव दलाश है, जहाँ कठेड़ी नाग का मंदिर है, जिसे कई विद्वान् कर्कोटक नाग मानते हैं। इसी प्रकार शंखू नाग की पूजा भी सिराज में तीन गाँवों में होती है। अनुश्रुति के अनुसार कभी एक साधु केउली बण में निवास करता था। एक दिन पूजापाठ करके शंख बजाया और उस भूमि पर रख दिया। शंख से एक नाग प्रकट हुआ। उसने अपने आपको नाग देव बताया। इसके बाद वहाँ एक मूर्ति मिली। ग्रामीण लोगों ने पहले केउली बण में और फिर राहवाली और रूपा गाँव में मंदिर निर्मित कर नाग को इनमें स्थापित किया। कालीवान देवरा

के नाग के बारे में प्रसिद्ध है कि वह सांप के रूप में नहीं, मुहरे के रूप में प्रकट हुआ और कालीवान देवरा में उसकी स्थापना की गई।

कुल्लू में जगतसुख और मनाली गाँवों में शीतकाल में एक मेला जुड़ता है, जिसे स्थानीय लोग गनेड़ कहते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति नाग हैड़ से बिगड़कर बताई जाती है। निश्चित दिन जगति के मन्दिर के बाहर साँझ ढलते ही सबसे पहले लकड़ी की मशालें जलाई जाती हैं। इसे देखते ही आसपास के सभी घरों के भीतर बरामदे में लकड़ी की छोटी-छोटी मशालें जब जल जाती हैं, तो सारी उपत्यका जगमगा उठती है। उसके दूसरे दिन जगतसुख, तीसरे दिन मनाली और चौथे दिन नगर में गनेड़ मेला मनाया जाता है, जो वास्तव में नागों पर विजय का उत्सव समझा जाता है। उस दिन धान की पराली और रस्सियों को जोड़कर एक लम्बा और मोटा रस्सा बनाया जाता है, जिसे नाग माना जाता है। इसे गूण कहते हैं। एक दल इस नाग-रूपी गूण का सिरा पकड़ता है और दूसरा दल पूँछ पकड़ता है। फिर दौड़कर मुकाबला होता है, जिसे ठोरा कहते हैं। तीन दौड़ों में यहाँ दो दलों के हार-जीत की प्रतियोगिता होती है। नागरूप गूण के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते हैं। लोग उन टुकड़ों को लेकर नाचते-कूदते, लड़ते, झगड़ते अपने घरों को चले जाते हैं। दोनों गाँव के लोग अपने देवीदेवताओं और लोकवाद्यों सहित इस में भाग लेते हैं।

इस प्रकार कुल्लू के प्रसिद्ध गाँव नगर के बारे में कहा जाता है कि प्राचीन काल में एक बार एक बड़ा दानव नाग, सामने के गाँव बड़ानाँ से नदी पार कर नगर में गाँववालों को परेशान करने लगा। लोगों ने जाणा गाँव के देवता जीव नारायण की शरण ली। सभी लोगों ने देवता के साथ इस नाग का हेड़ा किया और उस पर विजय प्राप्त की। तभी से यहां नागहेड़ा यानी गनेहड़ का मेला लगना है। गनेहड़ मेले में जो नृत्य होता है, उसे बाँढू नृत्य कहते हैं।

आउटर सिराज मे निरमंड के स्थान पर दीवाली से एक महीने बाद बूढ़ी दीवाली मनाई जाती है। इस दीवाली में आसपास के गाँव के खश लोग उस जगह पर आते है, जहाँ निरमंड निवासी आग के घियाने के चारों ओर नाचते रहते हैं। खश आक्रमणकारियों की भाँति आते हैं। फिर निरमंड के हरिजन कोली महीन लकड़ियाँ जोड़कर रस्सियों की सहायता से एक साँप की तरह बड़ी मशाल तैयार करते हैं, जो सिर की ओर से मोटी और पूँछ की ओर से पतली होती है। इसे सिर की ओर से आग लगाकर असंख्य लोग उठाकर गाँव में घुमाते हैं। फिर वे लोग घियाना के समीप आते हैं। कोली लोग राख मलकर घियाना के चारों ओर चक्कर लगाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु दूसरे लोग उन्हें वहाँ चक्कर काटने नहीं देते। यह संघर्ष सुबह तक चलता रहता है। दूसरे दिन घास की रस्सी से बनाए हुए नाग को एक दूसरे स्थान पर काटा जाता है, जिसे

बाँढ़ काटणा कहते हैं। ऐसी परम्परागत उत्सव नागों के साथ खश और कोलियों के संघर्ष की कहानी के प्रतीक लगते हैं।

सिराज में बड़ी नागन का मन्दिर भी बहुत पुराना है। कहते हैं एक बार एक गडरिया अपनी भेड़ चराने जंगल में एक चरागाह में ले गया। वहाँ उसने एक तालाब देखा, जिसका पहले कहीं अस्तित्व नहीं था। दिव्यदर्शन में उसे पता लगा कि पाताल में एक नागन आयी है, जो आसपास के गाँववालों से पूजा चाहती है। तब से उसकी पूजा एक सारस्वत ब्राह्मण पुजारी करने लगा।

बालूगोहर में बालूनाग का एक पुराना मन्दिर है। कहते हैं एक बार चातर्क ग्राम का ब्राह्मण नमक खरीदने मंडी गया। मार्ग में उसे चार महीने का बालक मिला, जिसने उसे अपने पीछे चलने को कहा। रात को चलते-चलते वे बालू वन में पहुँचे। वहाँ बालक ने ब्राह्मण को भूमि खोदने के लिए कहा। वहाँ उसे बालू में पाषाण की एक काली प्रतिमा मिली और बालक कहीं अन्तर्धान हो गया। रात वहाँ काटी। सवेरे एक कुम्हार वहाँ आया, जिसे ब्राह्मण ने सारी कथा सुनाई। कुम्हार ने समाधि में कहा कि वही नाग है। परन्तु ब्राह्मण ने कहा कि वह इस बात को तभी स्वीकार करेगा, यदि उसके घर एक पुत्र पैदा हो जाए। समय पाकर ऐसा ही हुआ, पुराने मन्दिर में अब तक वह पाषाण पिंडी, जो बालू से खोदकर प्रकट हुई थी, स्थापित है और गौतम ब्राह्मण उसकी पूजा करते हैं।

शेयुली ग्राम में कितना नाग का पुराना मन्दिर है। यह नाग किरथा ग्राम में प्रकट हुआ। कहते हैं कि इस ग्राम के समीप ही एक तालाब था, जहाँ प्यासे पशु पानी पीते थे। इस तालाब में एक बड़ा नाग रहता था जो सभी गायों का दूध पी लेता था। जब गाय का मालिक उसे मारने के लिए गया, तो साँप ने घोषणा की कि वह नाग है और कहा कि उसकी पूजा की जाएगी, तो वह गाँववालों को समृद्धि और सुख का आशीर्वाद देगा।

कहते हैं फाटीतुननग्राम का बहरा नाग जड़ू बाशर में खुराना के स्थान पर प्रकट हुआ। कहते हैं वहाँ के राणा की बेटी एक दिन भेड़ें चराने वन में गई। वहाँ उसने एक जगह पर तालाब में नौ पुष्प पानी में तैरते देखे। उनकी सुन्दरता से प्रभावित होकर उसने सभी पुष्प इकट्ठे कर लिये। पर जैसे ही उसने ऐसा किया वह मूच्छित हो गई और नौ दिन तक वहीं पड़ी रही। नौ महीने बाद उसने नौ नागों को जन्म दिया, जिसे उसने एक टोकरी में रखा। एक बार जब वह भोजन लेकर खेत जाने लगी, उसने अपनी माँ से कहा कि वह टोकरी को स्पर्श न करे। परन्तु उसके जाने के बाद माँ ने कुतूहलवश जब टोकरी खोली, तो साँपों को देखकर घबराई और जल्दी में टोकरी सामने जलती आग में पड़ गई। एक को छोड़कर सभी नाग सकुशल भागने में सफल हो गए। एक नाग का कान जल गया, जिससे वह बहरा हो गया। यह आहत नाग पहले तारापुर, फिर खड़गा की

ओर भागा, जहाँ राणा की गायें उसे दूध देने के लिए रुक गई। यहाँ से देवरी-धार गया, जहाँ गायों ने उसे दूध दिया। दोनों ग्रामों के लोगों ने इसकी पूजा प्रारम्भ कर दी। इसकी मूर्ति काले पाषाण की बनी हुई है और भूमि से दो फुट ऊँची है। प्रतिवर्ष खड़गा और देबहरी धार में मेले जुड़ते हैं।

शरशा के नाग शरशाई के बारे में प्रसिद्ध है कि एक बार चार औरतें नाई के चश्मे से पानी लेने गईं। तीन सकुशल पानी लेकर घर आ गईं, चौथी का घड़ा पानी में ही रह गया। इस चश्मे के किनारे एक काले पत्थर की मूर्ति थी, जिससे औरत ने प्रार्थना की कि वह उसे पूजेगी, यदि उसका घड़ा पानी से निकल जाए। घड़ा निकल गया, परन्तु वह अपना वायदा भूल गई। फलतः गाँव में सात दिन तक भारी वर्षा हुई। उस स्त्री ने गाँववालों को बताया और तब गाँववालों ने उस पाषाण प्रतिमा को गाँव में लाकर एक मन्दिर निर्मित कर स्थापित किया। प्रतिमा ढाई फुट ऊँची है और इसके रथ पर सोने और चाँदी का मुखौटा सजाया जाता है। मन्दिर की दीवारें भित्तिचित्रों से सजी हैं। केवल ब्राह्मण ही इस नाग को पूजते हैं।

मंझदेश फाटी, कोठी नारायणगढ़ के पाने नाग को लोग पनुन और कंगेश भी कहते हैं। एक बार रानीकोट के ठाकुर की रानी बीरनान को दिव्यदृष्टि से मालूम हुआ कि उसे एक पुत्र वरदान में मिलेगा, यदि वह पनुन तालाब के किनारे नाग के लिए एक मन्दिर बना देगी। प्रातःकाल एक किसान को तालाब पर एक सांप तैरता हुआ नज़र आया, जिसने उसे बताया कि वह कुरुक्षेत्र से आया है और उसका सम्बन्ध कौरव और पांडवों से रहा है। ठाकुर ने मन्दिर बना दिया, जिसमें नाग स्वयं पिंडी के रूप में प्रकट हुआ।

कूई कण्ढा के स्थान पर एक ठाकुर की गाय प्रतिदिन चरने जाती, परन्तु वहाँ एक नाग उसका दूध पी लेता। एक बार ठाकुर ने नाग का पीछा किया। वह एक सुराख में घुस गया। वहाँ खोदने पर उसे एक पिंडी मिली, जिसने कहा कि यदि वह उसकी पूजा करेगा तो गाय का दूध नहीं पियेगा। नाग का मन्दिर इस स्थान पर बनाया गया और एक फुट ऊँचा मनुष्य का मुहरा वहाँ स्थापित किया। कूई कण्ढा, सिरीगढ़ और कोटधार में मन्दिर भी है और इस नाग का मेला भी लगता है।

कहते हैं टकरासी नाग ने एक ठाकुर को शाप दिया और वह मर गया। ठाकुर की एक गाय प्रतिदिन एक स्थान पर पाषाण की प्रतिमा को दूध देती थी। एक दिन जब ठाकुर ने गाय का पीछा किया, उसने वहां पर उस प्रतिमा को तोड़ने के लिए हाथ उठाया। वहाँ से एक साँप उसकी रक्षा के लिए निकल आया। ठाकुर घर आकर मर गया, परन्तु उसके ग्वालों ने उसकी पूजा की और बाद में वह एक मन्दिर बनाया गया। इस नाग के साथ मिथरसी के मन्दिर

का भी सम्बन्ध जोड़ा जाता है ।

इसी तरह छत्री नाग की पूजा पहले शुदा का ठाकुर करता था। कहते हैं एक दिन उसे जंगल से एक विचित्र चिल्लाहट सुनाई दी। वहां जाकर देखा तो एक पाषाण प्रतिमा पड़ी थी। वह उसे घर लाकर पूजने लगा।

बासकी नाग का एक भाई तुरु नाग ऊँची पहाड़ी चोटी पर एक गुफा में रहता है। यह नाग वर्षा देता है और बिजली को गिरते से रोकता है। लोग वर्षा के बारे में उससे पूछते हैं। जब वर्षा सम्भावित हो, तो गुफा से पानी बहने लगता है।

जितना महत्त्व कुल्लू जनपद में अठारह नारायण का है, उतना ही अठारह नागों का भी है। इनका आज के जनमानस में परस्पर कोई विरोध नहीं है। जो नारायण को पूजता है, वह नाग को भी पूज सकता है। उनके लिए वे सब ईश्वर का प्रतिरूप ही हैं।

शिमला जनपद में नाग

हिमाचल प्रदेश के अन्य भागों की तरह, शिमला जनपद में भी नाग की देवता के रूप में पूजा होती है। केवल मन्दिरों में स्थापित नाग को देवता के रूप में पूजा जाता है। अन्य साँपों को मारना उचित समझा जाता है। इसमें केवल एक अपवाद है और वह है—घर के अन्दर साँप निकल आए तो उसे इसलिए नहीं मारा जाता, क्योंकि उसे गृह-देवता या किसी पुण्य आत्मा का रूप समझा जाता है। इसी तरह मंदिर में किसी को नहीं मारा जाता, क्योंकि लोक-विश्वास में उसे देवता का रूप ही समझा जाता है।

शिमला जनपद में निम्नलिखित नाग प्रसिद्ध हैं। यह सूची पूरी नहीं है। कई जगह कई गाँवों में एक ही नाग के मंदिर भी हैं।

1	कठोसी	बलसन
2	बालु	बलसन
3	नाली	जाहली चौपाल
4	कलुवा	
5	भाभा	बमटा
6	निगहू	थरोच
7	महेशुर	पूजाहरली रोहड़ू
8	मूल कलुवा	धार (कन्दारू), मधान, चडारा, हिमरी, पुजारली, जदौन, क्यारी (मधान), टिक्कर
9	नागदेव, बहिनज	खाबल रोहड़ू
10	तिलकू नाग	शैली (ढली)
11	नाग धानल	शांगरी
12	गोली	पुजारली
13	नागदेव	किम रामपुर
14	बोठा	बण्डा रामपुर

15 चालदा	करेड़ी, रामपुर
16 नवारू	नवारू ,,
17 गोशकवार	कवार रोहड़ू
18 शरी	शरी रामपुर
19 जंगलिका	जंगलिक, रोहड़ू
20 दिवदी	दिवदी "
21 तांगनू, विरीग	पेखा, रोहड़ू
22 पवासी	रोहल, गवास, छपाड़ी, रोहड़ू
23 बाषी	बाषी
24 शंदरी	शांगरी कुमारसेन
25 कोटेश्वर	मिहाना, कुमारसेन
26 बण्डा	बण्डा रामपुर
27 जड़ू	कोबील "
28 "	खरगा "
29 जड़ू	सरपारे
30 खाचली	मेलन, जड़ोल, कुमारसेन
31 घूंडा	घुंडा-कोटखाई, चडयाना
32 चैंथला	चैंथला "
33 शराबन	शोशन, बड़ैयों
34 बागी	कोटखाई
35 जड़ू नाग	देवरी-धार, खरग, तारापुर
36 शाथला	शाथला, कुमारसेन
37 हिमतला	हिमतला(शाथला) "
38 महासू	चेड़, ठयोग
39 माहू नाग	नालदेहरा, कुसुम्पटी
40 पुजाली	पुजाली, चौपाल
41 माननेश्वर या मगनेश्वर	मानन (शिलारू) कुमारसेन
42 बशैरू (ब्रज दर्शक)	रामपुर
43 झोजर	झोजर रामपुर
44 शरमला	शरमला } कोटखाई
45 पोहल	पोहल } कोटखाई
46 महासू	कई गाँवों में
47 विरीग	नांगनू

48 खनू	स्नोल (रोहड़ू)
49 नणदेव	गोकस्वादी
50 कालू	धार, बड़हैणा, नाल
51 नाग	कड़ोग, बटोल, डूमीं, चमोह, कोग, शंगीन, नाला (शिमला)
52 झड़ग	झडग (जुब्बल)
53 चाग	चपराणी, तलाह, मान्दरी

प्रत्येक नाग देवता की उत्पत्ति, शक्ति, पूजा-विधि के बारे में सम्बन्धित ग्राम में मिथ, लोककथाएँ एवं लोक-परम्पराएँ एवं विश्वास प्रचलित हैं। शिमला जनपद में नागों के मंदिरों की बनावट में छत सामने और पीछे की ओर से ढलवाँ होती हैं और बीच में उठता हुआ शिखर। इन मंदिरों की छतें प्रायः पत्थर की स्लेटों की बनी होती हैं। कहीं-कहीं लकड़ी की बनी हैं। मंदिर एक मंज़िले और कई मंजिले हैं। दीवारें तराशे गए पत्थरों और लड़की से बनी हैं।

मंदिरों के द्वार, फर्श, स्तम्भ और दरवाजे बढ़िया लकड़ी के बने होते हैं। दरवाजों पर बढ़िया खुदाई का काम किया हुआ मिलता है। कई दरवाजों पर चाँदी के पत्थर चढ़े हैं, जिनमें देवी-देवता, शेरों और नागों के चित्र उत्कीर्ण किए गए हैं। इनमें से अनेक देवताओं के रथ या पालकियाँ हैं और उनकी अन्य देवी-देवताओं की तरह पूजा होती है।

शिमला में रोहड़ू तहसील के टिकराल क्षेत्र, जो पब्बार नदी के स्रोत के समीप है, पंचनागों का क्षेत्र माना जाता है। ये पंचनाग हैं—गोशकबार, जंगलिका, द्रिवदी, तंगमू पेखा और खाबल। कहते हैं ये पंचनाग प्रथम हिमपात होते ही नागलोक (पाताल) चले जाते हैं और अपने श्रद्धालुओं के लिए सो जाते हैं और फाग उत्सव पर, जो मैदानों में होली के साथ होता है, ये नाग जाग जाते हैं। उस उत्सव पर, पूर्णमाशी से कुछ दिन पहले स्थानीय लोग दो दलों में बंट जाते हैं। एक देवता का दल, दूसरा उसे जगाने वाला। उस दिन व्रत रखकर दोनों दलों में से जगाने वाला दल बर्फ के गोले बनाकर मंदिरों में बने सुराखों को बीस कदम की दूरी से निशाना बनाते हैं। दूसरा दल जगाने वाले पर बर्फ के गोले फेंकता है। यदि मंदिर के कमरे में कोई बर्फ का गोला न फेंका जाए तो उन्हें जुर्माने में एक-एक मेंढा देना पड़ता है। ऐसी दशा में एक साथ लोकवाद्य की ध्वनि से भी देवता जाग जाता है, जागने पर लोग खुशी से नाचते और गाते हैं। ज्योंही कोई गोला सुराख में चला जाता है, नाग देवता के मंदिरों के द्वार खोल दिए जाते हैं और उनकी पूजा आरम्भ हो जाती है। देवता का माली तब स्थानीय भविष्यवाणी अपने भक्तों के सामने करता है।

अधिक नाग देवता मंदिर से बाहर निकलना पसन्द नहीं करते। कुछ नाग

देवता स्थानीय देवता के अधीन समझे जाते हैं। कुछ नाग देवताओं की पूजा अन्य ग्राम देवताओं की तरह नहीं होती। केवल किसी संक्रांति, त्योहार, नागपंचमी के दिन या किसी विशेष खुशी के अवसर पर पूजा होती है।

शिमला के क्षेत्र के प्रसिद्ध नाग देवताओं में नाग नाली, जाहली (चौपाहल), महेशुर नाग, पुजाहरली (रोहडू) नाग, खाबल, कलुवा नाग, गोली नाग, पंचनाग रोहडू, तगमूँ नाग, पेखा, गोली नाग, कोटेश्वर नाग, नाग घूंडा, महासू नाग, माहू नाग और बशेरू नाग के नाम गिने जा सकते हैं। इन सभी नाग देवताओं की सोने की मानवरूप की मूर्तियाँ बनी हैं जिन पर नागहुड उत्कीर्ण की गई है। इन सभी नागों के ऊँचे-ऊँचे बढ़िया मंदिर हैं। दिन में दो बार पूजा भी होती है। इन नागों को उसी ग्राम में ही नहीं, आसपास के अन्य गांवों में भी बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ मान्यता प्राप्त है। इन नागों की परम्परानुसार चार बड़ी संक्रांति, विशेष त्योहारों, उत्सवों, मेलों इत्यादि पर विशेष पूजा की जाती है।

कहते हैं नाग नाली, जाहली (पून्दर परगना) का पुराना मन्दिर पाँच पांडवों ने बनाया था। परन्तु किसी स्थानीय झगड़े में गाँव और मन्दिर को शत्रुओं ने जला डाला। उसी स्थान पर स्थानीय जनता ने नया मन्दिर बनाया है। इस घटना का विवरण प्रचलित लोकगीत (राजा परशुचन्द्र, 1800 ई०) में मिलता है।

झालौ माँझै रुऔ ला पुन्दरी रा नागौ
दौइयौ न राजा जाले मेरे लाइयौ न आगौ
कुड़िया धायो पुन्दरीया कभी न मानु
नागौ रे दौऊ जावले तेरे पौई करानु
जोरुए लाए जुशटीये नाईणे खि पाणे
नागौ रे दौये जावले पांजो पांडु रे चाणे

यह चौपाल क्षेत्र के प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली नागों में गिने जाते हैं।

किन्नौर के प्रसिद्ध मेशुरस (मोनशिरस) के अनेक भाई-बहनों में एक भाई शिमला जिला के पुजाहरली गाँव में रहता है। यह गाँव रोहडू तहसील में समरकोट के समीप है। परन्तु यह महेशुर नाग अपने आपको बाणासुर का नहीं, शिवजी का ही रूप मानता है। इसके मुखङ् खुले ही रखे जाते हैं। इसका मन्दिर पहाड़ी शैली का बना है। इसी प्रकार रोहडू के खाबल ग्राम में पहाड़ी शैली का अत्यन्त सुन्दर और ऊँचा मन्दिर है। यहाँ पर दोनों समय खाबल नाग की पूजा होती है। खाबल नाग का अपना रथ है; लोकवाद्य एवं लोकवादक हैं। दूर-दूर के गाँव से लोग यहाँ भेंट चढ़ाने आते हैं। देवता खाबल की अधिक मान्यता के कारण, यह नाग समृद्ध नागों में से एक है।

मृतात्माएँ किस प्रकार दूसरा जन्म लेकर नाग का रूप धारण कर लेती हैं, यह कलुवा नाग के प्रकट होने की घटना से स्पष्ट हो जाता है। किस प्रकार पुण्यात्मा साधू कालू, ब्राह्मण एक दिव्य घटना के फलस्वरूप मरकर शरैली (लम्बा साँप) बन गया और किस प्रकार साँप के रूप में यह पुण्यात्मा हिंसक बनकर चड़ारा, माढा और कंडारू क्षेत्र में काल बन घूमता रहा। अन्त में केलटी गाँव के चार शिलु भाइयों ने जब इसे मारा, तो उसके सिर से मूल नाग की दो प्रतिमाएँ उपलब्ध हुईं। ये प्रतिमाएँ कोयले की तरह काली थीं. जिसमें नागदेव सिंहासन पर विश्राम कर रहे हैं और दो भगवती दोनों ओर बैठी एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए हैं। इन दो मूर्तियों को धार और जदौन ग्राम में स्थापित किया गया। इसी प्रकार इस नाग के लिए पुजाहरली, टिक्कर, बयारी, भराना (मधान) में मंदिर हैं। मधान के राणा तथा कुल्लू के राजा, जो टिक्कर में दुर्ग बनाना चाहते थे, इस नाग की शक्ति से प्रभावित हुए। कहते हैं कुल्लू के राजा ने एक मूर्ति और चाँदी का नगाड़ा टिक्कर में नाग को भेंट किया। इस नाग के साथ अनेक मोर हैं, जिनमें खोड़ू, शक्ता, शरपाल, गूँगी इत्यादि भी रहते हैं। प्रत्येक स्थान पर अब वे नाग अपने आपको स्वतन्त्र समझते हैं।

गोली नाग भी कभी कोटखाई के प्रसिद्ध और शक्तिशाली नागों में गिने जाते थे। गोली नाग कभी कुल्लू के एक क्षेत्र में राज्य करता था। परन्तु दुखी होकर लोगों ने उनकी पालकी और मूर्ति दरिया सतलुज में बहा दी। उन्हीं दिनों कराग ग्राम से एक व्यक्ति को जो कुल्लू-यात्रा पर गया था, आगे चलकर दरिया के किनारे एक चमकती चीज़ नजर आयी, उसने सोने का अलंकार समझकर उठा ली। यात्रा में एक ग्राम में जहाँ यज्ञ हो रहा था, वह ठहरा और उनके उत्सव में शामिल हुआ। देवी को बलि चढ़ाए जाने वाला बकरा जब काफी जल छिड़कने पर भी नहीं काँपा, ताकि लोग समझें कि देवी ने भेंट स्वीकार कर ली है, तो लोगों ने देवी के माली से पूछा, जिसके द्वारा देवी ने बताया, कि उससे भी अधिक शक्तिशाली देव उस अजनबी के साथ आया है, जिसने अपना प्रभाव डाल दिया है। जब उसके लिए बलि चढ़ाई गई, तब जाकर देवी के लिए बलि चढ़ सकी।

वह व्यक्ति अपने घर जाकर नाग की पूजा करने लगा। उनके गाँव में देवी की पूजा सर्वमान्य थी, इसलिए वह व्यक्ति छिपकर अपने नाग की पूजा करता रहा। जब देवी यात्रा पर थी, तो इतना जोरों की वर्षा हुई कि देवी के पुजारी और उसकी पालकी सब बाढ़ में बह गए। वर्षा फिर भी होती रही। आखिर गाँववालों को जब मालूम हुआ, उन्होंने नाग को देवी की जगह, देवी मन्दिर में स्थापित कर दिया। वर्षा थम गई। एक बार एक बड़े साँप ने दरिया का बहाव रोक दिया और कोटखाई के ठाकुर के महल तक डूबने की बारी आ

गई। ठाकुर के कुलदेवता के बस की बात न रही, तो उन्होंने गोली नाग से आपत्ति से बचाने की प्रार्थना की। तुरन्त एक आग का गोला आसमान से छूटा और साँप के टुकड़े-टुकड़े कर पानी का मार्ग खोल दिया और इस प्रकार ठाकुर के महल और राजधानी को बचाया।

कहते हैं एक बार कुल्लू के राजा ने कोटखाई पर आक्रमण कर दिया, तब राजा ने शक्तिशाली गोली नाग से विशेष पूजा कर रक्षा की प्रार्थना की। तुरन्त कुल्लू के राजा की छावनी पर बादल गरजने लगे, बिजली ने जलाकर सब कुछ ध्वस्त कर दिया। कुल्लू के सिपाही कुछ बिजली गिरने से और कुछ भागते हुए बाढ़ में बह गए। एक बार ठाकुर के किसी वंशज ने नाग के पुजारी को कैदी बना दिया। इस पर नाग रुष्ट हो गए और कोटखाई के राणा को शाप दे दिया, कि शासन दूसरे राजा के हाथ में चला जाएगा। कोटखाई 1827 में अंग्रेजी प्रशासन के अधीन चला गया था।

प्राय: नागों का सम्बन्ध वर्षा, बाढ़, जल-स्रोतों इत्यादि से जोड़ा जाता है और इन्हें वर्षा का देवता माना जाता है। रोहड़ू में पेखा ग्राम के नाग का प्रादुर्भाव भी इसी प्रकार समझा जाता है। तंगमू नाग पेखा भी किन्नौर में स्थापित सपनी और ब्रऊआ के नाग का भाई समझा जाता है। तंगमू नाग का जन्म भी ब्रऊआ के समीप झील से हुआ समझा जाता है। इसी झील से प्राप्त सोने से तंगमू नाग की मूर्ति का निर्माण किया गया है। कहते हैं, जिस गड़रिये ने इस सोने की तीन मूर्तियाँ बनाकर अपने घर में रखीं, उसे एक रात स्वप्न हुआ जिसमें तीन देवताओं ने कहा—"तुमने तीन देवताओं को अपने घर में बन्दी क्यों बना रखा है। यदि तुम अपनी सुरक्षा चाहते हो, तो एक मूर्ति रोहड़ू में पेखा गाँव में स्थापित करो, जहाँ वह चसरालू देवता का रक्षक बना, दूसरी दो मूर्तियाँ किन्नौर में ब्रऊआ और सपनी के स्थान पर ठीक रूप से पूजा करने के लिए ले जाओ।" गड़रिये ने ऐसा ही किया। तीनों जगहों पर पत्थर और लकड़ी के पहाड़ी शैली के ऊँचे-ऊँचे मन्दिरों में इन नागों की पूजा होती है।

वैसे तो कोटेश्वर की महादेव के रूप में पूजा होती है, परन्तु कुछ ग्रामों में नाग के रूप में भी पूजा जाता है। कहते हैं हाटकोटी में, जो इसका जन्मस्थान समझा जाता है, जब जनता इसके अत्याचारों से दुखी हो गई, तो उसे तुम्बड़ी में बाँधकर सतलुज में डालने की योजना कुछ ब्राह्मणों ने बनाई। परोई बील गाँव के समीप तुम्बड़ी में बाँधकर ले जाने वाले ब्राह्मण का पाँव एक शिला से टकराकर फिसल गया। तुम्बड़ी टूट गई और कोटेश्वर ने उससे निकल भागकर बान और भील की झाड़ियों में शरण ली। वह इस स्थान पर साँप के रूप में फिर लोगों को तंग करने लगा। कुमारसेन में बटाड़ा के ब्राह्मण ने उस साँप को यदि वह देवता है, सामने आने के लिए कहा, नहीं तो उसे जादू के जोर से जलाने

की धमकी दी। कोटेश्वर देवता का रूप धारण कर जब ब्राह्मण के सामने खड़ा हो गया, तो उसने देवता के सामने नतमस्तक होकर उसे अपने गाँव में आने का निमन्त्रण दिया, जहाँ उसकी बारह वर्ष तक पूजा होती रही। कोटेश्वर ने उस ब्राह्मण को उस क्षेत्र का राजा बनाने का आशीर्वाद दिया, और स्वयं उस राज-परिवार का कुलदेव बन गया। उसके लिए मथाना जुवड़, पिछला टिब्बा, कोटी, मंढोली और मिहाना में मन्दिर बनाये, जहाँ उसे नाग के रूप में पूजा जाता है।

कहीं नागों का प्रकट होना दिव्य है, तो कहीं मानवी रूप में। एक जनश्रुति के अनुसार कोटखाई ग्राम मचरोटी की एक ब्राह्मण स्त्री ने एक नाग को जन्म दिया। भयभीत माँ की पीड़ा समझकर नाग ने माँ को ऊपर की मंजिल में रहने का परामर्श दिया जहाँ से एक छेद द्वारा माँ नाग को दूध पिलाती रही। एक दिन नाग ने वहाँ से चले जाने का निश्चय माँ को कह सुनाया और कहा कि जाते हुए उस पर हाथ फेर दे। ज्योंही माँ ने ऐसा करना शुरू किया उसके शरीर से सोना झड़ने लगा। इस पर माँ ने नाग की दुम पकड़ ली। नाग स्त्री को अपने साथ उड़ाकर ले गया और उसे मिहाना के पहाड़ में पटक दिया, जहाँ भूहरी देवी के नाम से आज तक काली बकरी की पूजा होती है। नाग पहाड़ की एक कन्दरा में रहने लगा। प्रतिदिन वहाँ कोठी ग्राम की गायों का दूध पीने लगा। ग्वाले ने देख लिया। गाँववालों को भी दिखाया। गाँव के एक साधू ने उसे मारने की ठानी। सोये नाग के तो तीन टुकड़े कर दिये परन्तु स्वयं भी जलकर भस्म हो गया। इन तीन टुकड़ों में शीर्ष वाला भाग घूंडा में, बीच वाला भाग भमराड़ा में और तीसरा पजउल की ओर पहुंचा, जहाँ ग्रामीणों को नागदेवता की मुहरें मिली। इन तीन जगहों के अतिरिक्त नाग देवता के मंदिर चैथला, पुंगरिश, पोहलीं और शरमला में भी हैं।

ठयोग में महासू नाग की उत्पत्ति भी विचित्र परिस्थितियों में चैड़ चोटी पर हुई मानते हैं। कहते हैं एक बार एक बूढ़ा बर्फ से ढकी चोटी के समीप लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहा था, कि उसे बरफ पर एक बड़ा नाग सरकते हुए नजर आया। भयभीत बूढ़े ने मन ही मन प्रार्थना की—"यदि तुम देवता हो, तो अन्तर्धान हो जाओ। यदि तुम डंक मारने वाले साँप हो तो मैं आत्मरक्षा में कुल्हाड़ा चला दूंगा।" आश्चर्य से उसने नाग को गायब पाया। कुछ दिनों बाद उसी जगह पर एक ग्वाले ने सफेद और काले नाग को गाय का दूध पीते देखा। गाँववालों को जब मालूम हुआ, वे उस बूढ़े सहित वहाँ पहुंचे, देखकर बूढ़े ने कहा कि यह वही नाग है। देखते ही देखते नाग कहीं छिप गया। उसी जगह पर एक दिन एक औरत घास काटने लगी। परन्तु साफ आकाश में बिजली चमकी और वह बिजली उस पर गिरी और वह जलकर वहीं राख की ढेरी हो गई। वहीं पर गाँववालों को सोने की मूर्ति मिली, जिसे वहीं मंदिर बनाकर

स्थापित किया गया। वहाँ पर प्रतिवर्ष नागपंचमी के दिन महासू नाग की विशेष पूजा होती है। शिमला जनपद में महासू देवता का सम्बन्ध भी नाग से जोड़ा जाता है।

माहू नाग भी हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध नागों में से है। माहू नाग का मंदिर शिमला से आगे नालदेहरा से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है। मंदिर आयाताकार बना है। इसकी चारों दीवारें लकड़ी और तराशे गए पत्थरों की बनी हैं। छत लकड़ी और सलेटों से ढकी है। प्रवेशद्वार पर लकड़ी पर असाधारण खुदाई का काम किया गया है। द्वार के दोनों ओर द्वारपाल बने हैं। दराजों पर नक्काशी की गई है और उस जगह भक्तों की भेंटस्वरूप चाँदी के सिक्के जुड़े हुए हैं।

नाग देवता की स्थापना पहली मंजिल पर की गई है, जहाँ तक लकड़ी की दाँतेदार सीढ़ी पर चढ़कर पहुंच सकते हैं। माहू नाग की मूर्ति एक छोटी-सी मंजूषा में रखी है। कहते हैं, किसी ने माहू नाग की प्रतिमा को नहीं देखा, क्योंकि सभी को यह भय है कि जो देखेगा, अन्धा हो जाएगा।

कहते हैं कि माहू नाग सतलुज के पार रहते थे, भक्तों की बार-बार प्रार्थना पर नदी के आर बस गये थे, नाग नदी की ओर आ गये। उनके भक्तों पर स्थानीय आदिम जाति के लोग भारी जुल्म ढहा रहे थे। कोगी के स्थान पर आकर नाग ने मावियों को नष्ट कर दिया। बाढ़ और तूफान में एक भी घर नहीं रहने दिया। कहते हैं जहाँ आज तक गोल्फ खेलते हैं, वहाँ कभी घना वन था और ग्वाले वहाँ पर गायें चराया करते थे। वहीं पर एक विशेष स्थान पर गाय के थनों से स्वयं दूध भूमि पर गिर जाता था। ग्वालों ने गाँवोंवालों को यह बात बताई। सबने जब यह दृश्य देखा, तो उस जगह खोदने पर उन्हें अष्ट धातुओं का एक मुहरा मिला। इसे गाँववालों ने अपने गाँव कोगी में मंदिर में स्थापित किया। विशेष उत्सव पर माहू नाग को गोल्फ मैदान में लाया जाता है, जहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है। ग्रामीण लोग यहाँ पर देवबाजा के सुर और लय पर नाचते और गाते हैं। लोकवाद्यों पर यह देवबाजा इतना सुन्दर बजता है, कि एक बार एक अंग्रेज लड़की जो मेला देखने आयी थी, स्वयं ही नाचने लगी और फिर नाचती ही रहीं। लोगों ने समझा उस पर माहू नाग आ गया है। माहू नाग से हाथ जोड़कर प्रार्थना की, तब कहीं उसे छुटकारा मिल सका।

माहू नाग को लोग मोनाल का नालदेव भी कहते हैं। जब यहाँ घने जंगल थे और पहाड़ी सुन्दर पक्षी मोनाल अधिक संख्या में इस क्षेत्र में होते थे, तब से माहू नाग को मोनाल या नालदेव भी लोग कहते हैं। नालदेहरा का भावार्थ नालदेव का मंदिर ही है।

माहू नाग नृत्य पसन्द करते हैं। कहते हैं एक बार एक बाजगी अपनी ढोलकी

सहित किसी समीप के गाँव में विवाहोत्सव से वापस आ रहा था। शाम के धुंधलके में जब वह जंगल से होकर गुजर रहा था उसे एक सुन्दर मोनाल पक्षी नजर आया। वह गुलेल से उसका निशाना बनाना ही चाहता था कि उस पक्षी ने बृहदाकार धारण कर लिया और बाजगी को कहा—"क्या तुमने मुझे पक्षी समझ लिया? आओ, हम नाचें, अपनी ढोलकी बजाओ।" लोगों का कहना है, नाग नाचते रहे, सारा संसार नाचने लगा। बाजगी भी नाचने लगा और नाचते-नाचते बेहोश हो गया। खेत, वृक्ष, चट्टान और देवता भी नृत्य में घूमता रहा। ऐसे हैं माहू नाग। अन्य नागों से बिलकुल अलग-थलग उनकी अपनी ही निराली शान है। माहू नाग की पुजा मण्डी जिला की करसोग तहसील में भी होती है। नालदेहरा से यह स्थान अधिक दूर नहीं है।

माहूनाग की तरह बशैरू नाग भी हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध नागों में से है। शिमला जनपद में बशैरू नाग की अनेक स्थानों पर पूजा होती है। कहते हैं कि एक स्त्री को घास काटते हुए एक बार त्रिमुखी सोने का मुहरा मिला। उसे घर लाकर भेड़-बकरी और पशुधन की समृद्धि के लिए उसे गोशाला में रखा। परन्तु प्रातः वहाँ पानी ही पानी था। सारे पशु डूब चुके थे या बह चुके थे। उसने भयभीत होकर वह मुहरा एक ब्राह्मण को दिया। उसका घर भी पानी से भर गया। तब ब्राह्मण ने गाँवोंवालों से कहकर गाँव के बाहर एक मंदिर बनवाया और नाग की वहाँ स्थापना की। यहाँ से अब भी वह मौसम पर नियंत्रण रखता है। मंदिर के समीप ही एक बड़ा चश्मा फूट पड़ा, वहाँ एक झील बनवाई, जिसका पानी सिंचाई के लिए भी आता है। अभी भी नाग को विशेष अवसर पर यहाँ लाया जाता है। उसके कारदार पांच-छह घंटे बातचीत नहीं करते। इस समयमें देवता के बजन्तरी बाजे बजाते रहते हैं ताकि देवी शक्ति का नाग में प्रवेश हो। यहाँ से ही यह नाग अन्य जगहों पर गया।

सराहन के समीप कलै गाँव का देवता वण्डा नाग इस क्षेत्र का प्रधान देवता समझा जाता है। कहते हैं, यह नाग अपने आठ भाइयों सहित सरपारा गाँव के एक तालाब से उत्पन्न हुआ। कहा जाता है, कि प्राचीन काल में जड़ देवता महादेव का पहरेदार था। वह इसी तालाब में रहता था। एक दिन इस तालाब में सुन्दर कमल खिले। इस गाँव की एक स्त्री सुनूमाई ने एक दिन तालाब पर आकर आठ कमल तोड़ दिये। नवाँ कमल आगे खिसकता रहा और वह उसे पकड़ने की होड़ में जल में डूब गई। वह छह मास वहाँ डूबी रही। सुनूमाई की प्रार्थना पर देवता ने उसे छोड़ दिया। वह वहाँ से निकलकर नागाजनी के स्थान पर बैठ गई। देखा तो नौ साँप उसके शरीर से चिपटे हुए थे। उसके शरीर से नौ स्थानों से दूध निकलने लगा। एक पिटारे में सब साँपों को रखकर वह उन्हें दूध पिलाती रही। गाय दुहते समय आधा दूध साँपों के लिए रख देती। दूध कम

होने के कारण एक दिन सुनूमाई की माँ को संदेह हुआ। खोज करने पर उसे पिटारा मिला। इसमें साँपों को देखकर वह डर गई। इस पर जल्दी से उसने लकड़ियाँ इकट्ठी कीं और पिटारा उस पर रखकर नीचे से आग लगा दी। परन्तु आग नहीं लगी। इस घटना के फलस्वरूप सभी नाग वहाँ से निकले। उन्हीं में से एक बण्डा नाग भी था। बण्डा गाँव कलै नाग के समीप ही है। इन नागों के नौ गाँव इस प्रकार हैं—

1. बण्डा
2. कोबील
3. खरगा
4. सरगा
5. सरपारे
6. माहुनाग
7. सापनी

दो नाग कहीं अज्ञात स्थान पर चले गए। कलै नाग का मन्दिर और रथ है।

इसी प्रकार खाचली नाग के बारे में कहा जाता है कि गाँव के कोलाहल से दूर, वह संन्यासियों की तरह वनों में रहना पसंद करता है। वह आज तक जड़ोल वन में तालाब के किनारे रहता है। एक बार एक माँ ने, जिसकी चार बेटियाँ काना देव हड़प कर गया था, खाचली नाग से प्रार्थना की, कि वह उसकी एक ही जीवित बच्ची की रक्षा करे। खाचली नाग ने विश्वास दिया कि जब काना देव के आदमी कन्या को बलि के लिए ले जाने को आएं, तो उसे खाचली नाग से शरण माँगनी चाहिए और उसका ध्यान करे। उस स्त्री ने ऐसा ही किया। उसी समय साफ आसमान में काले बादल जड़ोल पर छा गये और मेलन गांव तक पहुंच गये। बिजली चमकने लगी, तूफान आने लगा और भारी वर्षा से पुराना मेलन गाँव और उसका नर-बलि लेने वाला देवता—काना देव सब कुछ नष्ट हो गये। आसपास के गाँववाले खाचली नाग के पास आए और उसे अपना देवता बनाने के लिए प्रार्थना की, परन्तु नाग ने प्रार्थना अस्वीकार कर दी, क्योंकि वह पवित्र आत्मा और साधु आदतों के स्वामी थे। वह शानो-शौकत से दूर रहना पसन्द करते। खाचली नाग देवता न चुतुर्मुख को मेलन का नया देवता बनाने का सुझाव उन्हें दिया। स्वयं आज तक एकाकी रहकर उसी रूप में स्थानीय जनता के श्रद्धा-पात्र बने हुए हैं।

शिमला जनपद के झोंजर गाँव में पानी का अभाव दूर करने के लिए एक ब्राह्मण ने श्रीगुल की आराधना कर पानी की माँग की। श्रीगुल देव ने ब्राह्मण को एक तूंबा दिया और उसे उस स्थान पर खोलने के लिए कहा, जहाँ वह पानी चाहता था। उत्सुकता के कारण उसने तूंबा गाँव के नीचे ही खोल दिया। तूंबे में से नाग निकला और जिधर से वह गया, उधर से नहर चल पड़ी। इस प्रकार

ज्यादातर नागकथाओं में नागों का सम्बन्ध पानी से जोड़ा जाता रहा है।

600 वर्ष पूर्व तिलकू ग्राम के एक स्थान पर एक नाग मंदिर था। क्योंकि उस मंदिर में तब तक कोई पूजा नहीं होती थी, इसलिए वहाँ खेतीबाड़ी करने वाले ग्रामवासियों को वह तंग करने लगा। जब उन्होंने उसे पूजना आरम्भ किया, उससे नाग प्रसन्न हो गया। लोगों ने उसकी मूर्ति शैला गाँव के नवनिर्मित मंदिर में स्थापित कर दी। नाग की मूर्ति काली चमकदार है और उसके साथ भगवती की भी पूजा होती है। नाग पंचमी के दिन यह नाग तिलकू के पुराने स्थान पर अवश्य जाता है। महीने में केवल एक बार संक्रांति के दिन इसकी धूपदीप से पूजा होती है। बड़ोग के ब्राह्मण भी इसकी पूजा करते हैं। ग्रामदेवता के साथ इसकी पूजा भी की जाती है। छबीसी परगना में धानल के स्थान पर एक और नाग की पूजा होती है। कहते हैं 500 वर्ष पहले शांगरी राज्य के पट्टी जुबड़ के नागा थाना पर खेत में यह नाग प्रकट हुआ। धानल ग्राम का एक किसान नागा थाना में हल चला रहा था। वहाँ उसे एक काली प्रतिमा मिली। वह उसे घर ले गया। परन्तु घर में उस दिन से अप्रत्याशित घटनाएँ होने लगीं। इस पर सब लोगों ने उसकी पूजा करनी शुरू कर दी। अब ग्राम देवता मालेंदी देव के साथ इसकी भी पूजा की जाती है।

अभी तक मैंने ऐसे नागों का उल्लेख किया, जिनकी नित्य पूजा होती है, परन्तु शिमला क्षेत्र में ऐसे भी स्थान, मूर्तियाँ और मंदिर आज भी विद्यमान हैं, जिन्हें अब स्थानीय लोग या तो भूल गये हैं या अन्य शक्तिशाली देवी-देवता की पूजा के कारण उन्हें भुला दिया गया है। ऐसे स्थानों में कोटखाई में नागड़ू और गोलीनाग का मन्दिर तथा रोहड़ू में नाग गुफा शोषण। पहले दो का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यहाँ हम नाग गुफा शोषण का उल्लेख करेंगे। जुब्बल में हाटकोटी, आराकोट होकर कठंग (20 मील) पहुंचना पड़ता है। कठंग से त्यूणी (5 मील) सड़क छोड़कर लगभग तीन मील दक्षिण की ओर सघन वन में एक ऊंची पर्वत चोटी के मूल भाग में यह कला की दृष्टि से सुन्दर गुफा है, जिसे देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि कभी इधर नाग पूजा परम्परा का प्रभाव रहा होगा। गुफा का प्रवेशद्वार बहुत ही संकीर्ण है, इसलिए खड़े होकर इस गुफा में प्रवेश संभव नहीं। अतः दंडवत झुककर अन्दर जाना पड़ता है। गुफा के द्वार से ही एक वर्गाकार गुफा की तरफ गया हुआ पाषाण का काफी मोटा नाग उत्कीर्ण है। द्वार से आरम्भ होकर चार-पांच गज आगे तक जाकर वह पत्थर का नाग गुफा की दीवार में चढ़ जाता है और गुफा की छत में उसके सहस्रों फण स्फटिक पत्थर के लगते हैं, जिनमें अब भी बहुत चमक है। गुफा द्वार से तंग परन्तु धीरे-धीरे अन्दर से चौड़ी होती जाती है। गुफा के अन्तिम भाग में केवल दो-तीन व्यक्ति ही बैठ सकते हैं। गुफा का मध्य भाग अधिक चौड़ा है। भीतर प्रकाश का अभाव है। गुफा के

अन्तिम भाग में दो मूर्तियाँ गुफा के पत्थर में उत्कीर्ण की गई हैं। शिवजी का लिंग ही लगता है। शिवरात्रि और श्रावण मास में ही लोग यहाँ आते हैं। समीप ही एक स्वच्छ नदी बहती है। अभी तक कला-पारखियों एवं इतिहासकारों ने इस सुन्दर स्थल को नहीं खोजा, तभी इसका जिक्र किसी अनुसंधान पत्र में नहीं मिला। परन्तु एक बात स्पष्ट है कि शिमला जनपद में नाग-पूजा भी इतनी ही लोकप्रिय है, जितनी अन्य ग्राम देवी-देवताओं की।

कांगड़ा जनपद में नाग

काँगड़ा जनपद में वर्तमान जिला काँगड़ा के साथ-साथ हमीरपुर एवं ऊना को भी यदि सम्मिलित किया जाए तो कोई आपत्ति नहीं हो सकती । काँगड़ा में आजकल नागों के अधिक मन्दिर नहीं मिलते ।

धर्मशाला से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर ऊंचे-ऊंचे देवदारू और पलाश निकुंज के बीच भागसूनाग या भागसूनाथ का प्राचीन मन्दिर और जलाशय है। इस मंदिर और तालाब के बारे में जो जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि शैवमत से पहले यहाँ नागों का आधिपत्य रहा होगा। वैसे भी यह दोनों परस्पर कभी विरोधी मत नहीं रहे। कहते हैं प्राचीन काल में इस छोटी-सी झील का स्वामी एक नाग था, जिसके नाम पर इस स्थान का नाम भागसू नाग पड़ा। भागसू का अर्थ जल से ही है। अब तो नाग के स्थान पर नाथ ही रह गया है। शिवमंदिर यानी भागसूनाथ के प्राँगण में पड़ी पाषाण प्रतिमाएं पड़ी हैं, जिनमें नागों की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। एक जनश्रुति के अनुसार भागसू का नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि एक बार वासुकी नाग (बासक नाग) ने, जो सर्पों के राजा समझे जाते हैं, भोलानाथ का अमृत-पात्र चुरा लिया। शिवजी ने उसे इस कार्य के लिए दण्डित करना चाहा, भागते हुए पात्र हाथ से उलटा होकर गिर गया, जहाँ से पानी का चश्मा फूट पड़ा। यह घटना कहते हैं, भागसू के स्थान पर घटी, जिसका नाम वासुकी के भागने से पड़ा। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार द्वापर युग में राजस्थान में जब भीषण जल-संकट पैदा हो गया, उस समय अजमेर (राजस्थान) से एक यक्ष—भागसू अपने भाई पहाड़ू दैत्य के साथ जलामृत की खोज में नागडल जो भागसू से 40 की० मी० दूर 1,000 फीट की ऊंचाई पर है, पहुंच गए। उस नागडल का स्वामी नाग उस समय वहाँ नहीं था। यक्ष ने अपनी मायावी शक्ति से सारी जलराशि को एक छोटे-से पात्र में बंद कर दिया। दोनों भाई जब वापस जाने लगे, भागसू के स्थान पर चलते-चलते थक जाने के कारण जब विश्राम करने लगे, नाग ने उन्हें देख लिया। जब नाग ने जलसरोवर को वापस माँगा, उन्होंने इनकार कर दिया। इस पर घोर युद्ध शुरू हुआ। दोनों भाई मारे गये, परन्तु मरने से पहले यक्ष ने एक वचन माँग, कि जिस स्थान पर उसका युद्ध हुआ, उस

जगह के साथ उसका भी नाम जोड़ा जाए। इसलिए उस जगह का नाम भागसू-नाथ पड़ा। श्रावन महीने में यहाँ एक मेला जुड़ता है।

घनियारा के स्थान पर इन्द्रनाग का एक मंदिर है, जिसका निर्माण घनियारा के राणा ने किया था। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार इसका निर्माण सुकेत के राणा ने किया था। साँप की प्रतिमा एक पत्थर पर खोदी गई है। फसल आने पर नाग की पूजा की जाती है। लोगों का विश्वास है कि नागपूजा से फसल अच्छी होती है। पहले यहाँ भेड़-बकरे का भी बलिदान दिया जाता था।

रानीताल के स्थान पर जमवाला नाग का मंदिर है। कहते हैं, यहाँ साँप के काटे का उपचार होता है। भेड़ का बलिदान भी दिया जाता है। नागबाड़ी मंदिर में भी नाग की पूजा होती है। परन्तु यहाँ मेला नहीं जुड़ता। कहते हैं इस मंदिर की स्थापना नूरपुर के राजा कैलाश ने 250 वर्ष पूर्व की थी, जिसे फिर से बाद में राणा जगततानी ने बनाया। उसी ने इस मंदिर में नाग की पाषाण प्रतिमा स्थापित की।

लोगों में यह भी विश्वास पाया जाता है कि नूरपुर के राजवंश में कैलाश-पाल के उत्तराधिकारी नागपाल के साथ नाग ने एक ही माता के गर्भ से जन्म लिया। उस नाग को एक बावली में छोड़ दिया गया, इसीलिए इस वंश के पठानिया राजपूत साँप को अपना कुलज मानते हैं।

विशेष अवसर पर काँगड़ा में कहीं-कहीं नाग की मूर्ति के साथ-साथ जीवित साँप का भी पूजन किया जाता है। कई घरों में साँप का स्वागत लाठी के स्थान पर धूपदीप से किया जाता है। साँप के सम्मान के लिए कई जगह पर मेले जुड़ते हैं। नगनी का मेला वर्षा ऋतु में इसी का द्योतक है। कहते हैं, इस मेले में यदि नाग के दर्शन हो जाएं तो मेला सफल माना जाता है।

नगनी, त्रिपाल और शिब्बू का थान और गूगा की अनेक मढियाँ साँप के काटे के इलाज के लिए प्रसिद्ध हैं। नूरपुर में शिब्बू का थान, पालमपुर में सलोह और काँगड़ा में त्रिपाल में नाग पंचमी पर नाग की विशेष पूजा होती है।

नगनी के स्थान पर जो पठानकोट से बीस मील की दूरी पर है, मिट्टी का एक चबूतरा बना हुआ है, वहाँ साँप की सादा मूर्तियाँ रखी हैं। परम्परा के अनुसार बहुत पहले वहाँ एक कोढ़ी ने रहना शुरू किया और उसका कोढ़ दूर हो गया। जब उसका कोढ़ दूर हो गया, उसे पूरा विश्वास हो गया कि इस स्थान में असाधारण चमत्कार का कोई कारण हो सकता है। इसलिए उस जगह झोंपड़ी के साथ की झाड़ियाँ साफ करने लगा। ऐसा करते हुए उसे दूध की तरह श्वेत नागिन मिली। उसने अपने जादुई रूप से अच्छे होने का श्रेय उस नागिन को दिया। यह बात जब फैली, तो लोग साँपों की पूजा करने लगे और तब से उस जगह का नाम भी नगनी पड़ा।

धर्मशाला से 22 मील की दूरी पर स्थित त्रिपाल गाँव में जमवाल नाग का मंदिर है। यहाँ के राजपूत कहते हैं, जम्मू से आए हैं और अपने साथ वे अपने गृह-देवता नाग को भी लाए, जिसे यहाँ मंदिर में स्थापित किया। पहले बहुत कम लोग ही इस नाग की पूजा करते थे। कहते हैं एक बार एक साँप ने गाँव के समीप की चरागाह में काट लिया। जमवाल नाग के भक्त ने ग्वाले को जमवाल नाग की पूजा करने को कहा। ग्वाले ने नाग से प्रार्थना की और मिठाइयाँ तथा एक खड़ू नाग को भेंट चढ़ाया। गाय ठीक हो गई और इस प्रकार नाग समीपवर्ती गाँव में प्रसिद्ध हो गया।

परन्तु ऐसा लगता है कि गूगा चौहान को देवता का स्थान मिल जाने पर ही नागपूजा को इस क्षेत्र में और भी लोकप्रियता प्राप्त हुई। लोग सांपों से बचने के लिए गूगा से प्रार्थना करते हैं। गूगा वासुकी नाग का प्रसिद्ध भक्त माना जाता है। कसुधि ने गूगा को वह वरदान दिया था कि जो कोई गूगा की पूजा करेगा या उसका स्मरण करेगा उसे साँप नहीं मारेगा और काटे का प्रभाव नहीं होगा। गूगा के प्रसिद्ध मन्दिर काँगड़ा में सलोह, कुटियारा और जलारी में है।

कहते हैं गूगा चौहान के जन्म से पहले एक दिन उसकी माँ रानी बाछल जब बैलगाड़ी से जा रही थी तो मार्ग में साँप ने बैलों को डंस लिया। उसी रात सपने में गर्भस्थ शिशु ने माँ से कहा कि वह नीम की टहनी लाकर गुरु गोरखनाथ से बैलों के जीवन के लिए प्रार्थना करे। इसमें माँ को सफलता मिली और इससे गूगा साँप के डंस का रक्षक बन गया।

लोकवार्ता में इसका उल्लेख मिलता है, कि गूगा किस तरह अपने भक्तों को अपने इस वरदान का लाभ पहुँचाता है। इसका एक उदाहरण है सिद्धपुर गढ़ के बाबा शिब्बो को वरदान देना। बाबा शिब्बो ने जो लँगड़ा, बहरा और गूँगा था, बारह वर्ष गूगा की सेवा की और उस दौरान उसके साथ शतरंज भी खेला। बाबा शिब्बो की सेवा से अत्यन्त प्रसन्न होकर गूगा ने उसे कई वरदान दिये। एक था कि जिस जगह वे दोनों मिले, शिब्बो के थान से प्रसिद्ध होगी। दूसरे, जिस जगह वे दोनों शतरंज खेलते थे, वहाँ की मिट्टी साँप के काटे के लिए अचूक औषधि होगी।

आज तक शिब्बो की पूजा होती है। शिब्बो दा थान के मकानों में कोई फर्नीचर नहीं रखा जा सकता। कहते हैं एक बार श्री जी० सी० बारनेस, जो 1947 से 1951 तक कांगड़ा के जिलाधीश रहे, यहाँ मालगुजारी एकत्र इकट्ठा करने आए। वह जब चारपाई पर बैठे, अचानक एक साँप वहाँ आ गया, जो उनके हाथ और पैरों से लिपट गया और अपना फन उठाकर उनके मुँह के आगे फैला दिया। बारनेस बड़ा पछताये और मजबूर होकर बाबा शिब्बो से क्षमा-याचना की। लोगों के कहने के अनुसार वह शिब्बो ही था और प्रार्थना सुनकर

नागपाश ढीला कर दिया और रेंगता हुआ कहीं अदृश्य हो गया। अपने पश्चाताप-स्वरूप बारनेस ने मन्दिर को ईंटों से नवनिर्मित किया, जो उसने समीप के दुर्ग मस्तगढ़ से मँगवाई।

साँप के काटे का उपचार इन सभी मन्दिरों में एक जैसा होता है। रोगी को मन्दिर में ले जाकर लिटाया जाता है। घाव के समीप अनबटा धागा बाँधा जाता है। उसे मन्दिर में कुछ मिट्टी खाने को दी जाती है और जिस पानी से मन्दिर की मूर्ति को नहलाया जाता है, उसे पीने को दिया जाता है। उसे मन्दिर के चारों ओर घूमने को कहा जाता है और जब तक वह ठीक न हो जाये, उसे सोना नहीं दिया जाता।

भक्त लोग इस पवित्र स्थान की मिट्टी अपने घरों में भी रखते हैं। जब कभी किसी को साँप डँस लेता है, लोग उस चमत्कारी मिट्टी को निकालकर पानी में घोलकर रोगी को पिलाते हैं। यह घोल घाव पर भी लगाया जाता है। इस इलाज के बाद रोगी को मन्दिर में ले जाया जाता है, जहाँ उपयुक्त सारी विधि दोहराई जाती है। लोगों को इस इलाज पर बड़ा विश्वास है। कहते हैं, कि इस उपचार से लाभ भी हो जाता है।

कहते हैं नूरपुर के राजवंश में कैलाशपाल के उत्तराधिकारी नागपाल के साथ नाग ने एक ही माता के गर्भ से जन्म लिया था। पैदा होने के तुरन्त बाद उस नाग को एक बावड़ी में छोड़ दिया गया। इसीलिए इस वंश के पठानिया राजपूत साँपों को अपना कुलज मानते रहे हैं।

कांगड़ा जनपद, भौगोलिक स्थिति के कारण, विषैले सर्पों से घिरा है। तभी मुलेर के जटोडिए पुरोहितों ने, जोकि मणि वाले पुरोहित कहलाते हैं, विष-प्रभाव को दूर करने के लिए मणियाँ रखी हुई थीं। नाग मूर्तियों और जीवित साँपों की पूजा आज भी इस घाटी में कई जगह पर विद्यमान है। घरों में प्रायः साँपों को मारने की बजाय धूप, दीप, नैवेद्यादि से उनकी पूजा की जाती है। नया घी पहली बार नाग देवता को समर्पित किया जाता है। यह प्रथा तो हिमाचल प्रदेश के अन्य भागों में भी प्रचलित है।

किन्नौर जनपद में नाग

किन्नौर जैसे जनजातीय क्षेत्र में भी नाग पूजा का प्रभाव रहा है। किन्नौर में नाग को देवता के रूप में पूजा जाता है। किन्नौर में नागों की उत्पत्ति प्रायः किसी झील या तालाब से हुई मानी जाती है। अथवा उनका सम्बन्ध किसी पानी से जोड़ा जाता है। ब्रूआ, सापनी, पौण्डा, यूला, उरनी, बरी और सांगला गाँव के नाग इनमें गिने जा सकते हैं। किन्नौर के प्रसिद्ध नाग देवी-देवता और उनके गाँव इस प्रकार हैं—

1.	नाग देवता	कड़छम, रिब्बा, निचार, मगपा, वारंग, सापनी,
2.	नागिन	छोटा कस्बा (निचार)
3.	रापङ्ग् नागस एवं नागिन	अशरङ्ग
4.	नाग	कमरू
5.	नागस वायोच	रोघी
6.	नाग	माटिङ छाडा
7.	रापङ नागस	लियो
8.	नाग	ब्रूआ
9.	,,	सांगला
10.	,,	सापनी
11.	,,	बारङ्ग एवं मेबरा (काल्पा)
12.	जल	यूला
13.	,,	उरनी
14.	,,	बरी
15.	,,	नात्पा
16.	दारंग नाग	यंगपा
17.	कन्दार नाग	
18.	चसू नाग	

ब्रूआ, सापनी और पौण्डा के नागों की उत्पत्ति पौण्डा गाँव से मानी जाती है। पौण्डा ग्राम की एक लड़की तुंगके का विवाह ब्रूआ गाँव में हुआ था, जहाँ

पीने का पानी दुर्लभ था। तुंगके पानी ढो-ढोकर बहुत दुखी हो गई थी।

एक बार मायके में जब अपने पिता का सिर गोद में रखकर कंघी कर रही थी और पिता ऊँघ रहे थे, उसके आँसू की एक बूंद पिता के मुँह पर गिर गई। पिता ने दुख का कारण पूछा—तो तुंगके ने सब कुछ बता दिया। जिस दिन तुंगके ससुराल जाने लगी, पिता ने एक पिटारा देते हुए कहा कि वह पिटारा घर पहुँचने से पहले न खोले। कौतुहलवश लड़की ने मार्ग में छटाछड (बांडतू), सँडरेसो (कड़छम) और कन्द्रालस के स्थान पर जब पिटारा खोला, तो उसमें से तीन नाग निकलकर झाड़ियों में छिप गये, और वहाँ से पानी का झरना फूट पड़ा। घर पहुँचकर उसने पशुघर के दरवाजे पर धूप जलाकर पिटारा खोला, तो वहाँ पर पानी भर गया। अब तुंगके ने चश्मों से पानी लाना बन्द कर दिया। गाँव की एक बुढ़िया ने किसी तरह तुंगके के रहस्य का पता लगा लिया। उसने इसे जान-बूझकर उलटी सलाह देकर उसके पानी सुखाने का प्रयत्न किया। तुंगके ने बहकावे में आकर उसकी बताई विधि से बारी-बारी सभी साँपों को काटना शुरू किया और कटे टुकड़ों को गाँव से दूर ढाँक से नीचे गिरा दिया। साँपों के वे टुकड़े स्वयं जुड़ते गये और बहुत बड़ा साँप बन गया। वह नाग साँपनी गाँव से पर्वत की ओर बढ़कर पर्वत शिखर को काट कर दूसरी ओर बढ़ गया। वहाँ एक तालाब दुलिंड पर पहुँचा। वहाँ रोहडू क्षेत्र के ग्वाले भेड़-बकरियाँ चराते थे। उनका एक मेमना प्रतिदिन रेवड़ से बिछड़ जाता था और खोजने पर दुलिंड तालाब के पास मिलता था। एक दिन उनके मालिक ने तंग आकर उसे तालाब पर ही काट दिया। उसका कटा सिर तालाब में फेंक दिया और शेष शिकार को साफ करके अपने डेरे में पकाने के लिए ले गये। घर जाकर जब माँस खोला तो उसमें सोना मिला। उस सोने से उनके मन में देवमूर्ति बनाने की इच्छा हुई। रोहडू में एक सुनार को यह काम सौंपा। सुनार एक मुख वाली मूर्ति बनाता तो वह स्वयं तीन मुख वाली बन जाती। मूर्ति बनाते-बनाते सुनार की मृत्यु हो गई। ये तीनों मूर्तियाँ अब तीन स्थानों पर मंदिरों में स्थापित की गई हैं। सापनी में वह घर अब भी विद्यमान है।

उरनी का नाग गाँव के बाहर एक पत्थर के पास अदृश्य रूप में रहता था। बाद में उसने वहाँ के नारायण देवता से प्रार्थना कर बाहर निकलने की आज्ञा माँगी जो मिल गई। अब इस गाँव में नाग देवता का रथ है। यह घटना 60 वर्ष से पुरानी नहीं। कहते हैं बरी गाँव का नाग भी मीरू में एक तालाब से उत्पन्न हुआ। साँगला गाँव के तीन नागों में से एक सामने के पहाड़ की झील से प्रकट हुआ। दो नाग भी उससे पहले उसी तालाब से प्रकट हुए बताए गए हैं।

किन्नौर के अधिकांश नाग देवता शाकाहारी हैं और दूध, घी और धूप के पूजन से ही प्रसन्न हो जाते हैं।

अभी तक इस जनजातीय क्षेत्र में देवी-देवताओं के चमत्कारों पर पूरी आस्था है और नागदेवता को भी अन्य देवी-देवताओं की तरह पूज्य समझा जाता है।

सभी नागों को अन्य देवी-देवताओं की तरह जनमानस में श्रद्धा एवं भक्ति से देखा जाता है। विशेषकर वर्षा एवं घरेलू कष्टों के लिए लोग इन मंदिरों में विशेष पूजा करते हैं।

नामगया में चोला, डबला, कुलदेव के साथ बशाहरू नाग की पूजा भी होती है। परन्तु यहाँ इन देवी-देवताओं का मंदिर कोई नहीं है। पहाड़ी पीपल के पुराने वृक्ष में भी जनता की धारणा अनुसार इन देवताओं की आत्माएँ वास करती हैं।

सापनी गाँव में नाग की पूजा होती है। नाग देवता के इस गांव में चार मंदिर हैं। तीन तो एक ही जगह एक ही पंक्ति में स्थित हैं और चौथा कुछ ऊपर। इन मंदिरों में 34 देव मुखौटे रखे हैं। कुछ सोने के, कुछ चांदी के और कुछ अष्टधातु के बने हैं। दो समय यहाँ नागों की पूजा होती है। पन्द्रह दिन में एक बार काली या कैलाश की पूजा भी नाग की ओर से की जाती है। इस पूजा की सारी सामग्री नागों के कोष से की जाती है। स्पष्टतः सभी देवी-देवताओं का नागों से भी सम्बन्ध जोड़ा गया है।

विश्व में नाग-पूजा-परम्परा

नागपूजा का प्रचलन केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व की अन्य संस्कृतियों एवं धर्मों में भी इस परम्परा का उल्लेख उपलब्ध है। यूनान, मिस्र, चीन, अफ्रीका, मध्य अमेरिका, दक्षिण पूर्वी एशिया, अरब, जुडिया, फोनिशिया, रोम, स्कैंडिनेविया, फ्रांस, सरमाशिया, ब्रिटेन, लंका, ईरान, कम्बोडिया, इंडोनेशिया, तक इसके उदाहरण उपलब्ध हैं। इन देशों में कुछ मुहरें, पाषाण प्रतिमाएँ, मंदिर अवशेष तथा धार्मिक साहित्य एवं इतिहास में नाग पूजा के बारे में जानकारी मिलती है, जिससे नाग सम्प्रदाय की व्यापकता और प्राचीनता का आभास मिलता है।

जेम्स फर्गुसन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वृक्ष और नाग पूजा' में लिखा है, 'यदि सबसे पुरानी नहीं, तो आरम्भ की उन पूजा रूपों में से एक नाग पूजा द्वारा मानव मस्तिष्क ने अज्ञात शक्ति को प्रसन्न करने की चेष्टा की है। इसके उदाहरण न केवल देशों के प्राचीन इतिहास में उपलब्ध हैं, अपितु नई खोज से पहले मूर्ति पूजा की झलक सभी जगह उपलब्ध होती है। आज भी नाग पूजा विश्व के अनेक देशों में वर्तमान के मुँह में झाँक रही है और हमें आश्चर्यचकित कर देती है कि इसकी अनेक विचित्र पूजा विधियाँ आज के मानव को चकित कर देती हैं।

नाग पूजा किस जाति, देश या धर्म में कब और कैसे प्रारम्भ हुई यह आज निश्चित रूप से बताना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इसे प्रारम्भ करने वाला न कोई एक मनुष्य था न, किसी धर्म से इसका क्रमबद्ध समन्वय जोड़ना सम्भव है।

यूनान में प्राचीन काल से नागपूजा के संकेत मिलते हैं। यूनान के प्रारम्भिक मिथकों में साँपों को नष्ट करने के बारे में जिक्र मिलता है। हेलनिक आधिपत्य के बाद साँपों के साथ अच्छा बर्ताव होने लगा। नाग नगर के रक्षक समझे जाने लगे। एक यूनानी पुराण कथा अनुसार देव अपोलो ने पाइथोन नाग का संहार किया। कैडमस ने उस नाग को मार दिया, जो उसके आदमियों को हड़पकर जाता था। यद्यपि हरक्यूलीज सर्प जाति के रूप में प्रसिद्ध हैं, परन्तु उसे नाग पूजा पर विश्वास रखने वाली सीथियन जाति का पिता इसलिए माना जाता हैं, क्योंकि उसने नागकन्या एशीदेना से संभोग किया था।

इस प्रकार से जब हेराक्लिडाइ वापस आया, साँपों को डेल्फी ओर ट्रोकोनियस की गुफाओं में रखा जाता था। नागपूजा का महान केन्द्र एपीडोरस था, जहाँ पोसनियास के समय तक नाग रखे जाते थे और उन्हें भोजन मिलता रहता था। यूनानी पुराणों में नागों को देवताओं का प्रतिनिधि समझा जाता था।

प्लटार्क के अनुसार सिकन्दर महान की माँ ओलम्पिया ने घर में पालतू साँप रखे थे। फिल्प का संभवत विचार था कि सिकन्दर नागों की सन्तान है। लुशियन के अनुसार भी सिकन्दर को साँपों की सन्तति माना गया है।

मिस्र-निवासी भी नागों को विशेष महत्त्व देते थे। मिस्र की विभिन्न देव-कथाओं में नागों का नाम आता है। मिस्र की जीवनरेखा नील नदी के रक्षक भी नाग हैं और उसके किनारे दीर्घ समय तक नाग पूजा होती रही। मन्दिरों की दीवारों पर नागों को चित्रांकित किया गया था। मिस्र के प्राचीन सम्राटों के मुकुट में नाग की आकृति बनी रहती थी और सम्राट अपने माथे पर फण फैलाये नाग की आकृति का गोदना गुदवाया करते थे।

जुडिया अदन के बगीचे में जीवन तथा ज्ञान के वृक्ष उगाने के बारे में जीनिसिस के द्वितीय तथा तीसरे अध्याय का वर्णन मिलता है। कहते हैं वृक्षों की सुरक्षा नागों को सौंपी जाती थी। परन्तु यहूदी धर्म के विकास के साथ-साथ ऐसा लगता है, इस क्षेत्र में नाग पूजा का ह्रास हुआ। जुडिया के सुनसान वनों में पीतल के नाग की उपस्थिति तथा उससे बीमारों को ठीक कर देने की क्षमता के बारे में पहला लिखित प्रमाण भी उपलब्ध है। इसके बाद यूनानी पुराण कथाओं में नाग पूजा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। हीजिया तथा एसक्लापियस नाग पूजा के ही प्रतीक थे। फिर ऐसा लगता है यह परम्परा इतिहास के अन्धकार में कहीं खो गई। फिर न ही बाइबिल में और न ही तालमुख में नागपूजा के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। हेज़किया ने तो इस पूजा को समाप्त करने का ही प्रचार किया। फिर ऐसा प्रतीत होता है कि ईसाई मत के ओफाइट सम्प्रदाय में फिर से नाग पूजा परम्परा उभर आयी। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण यह था कि यह प्रभाव ईरान से प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त मुस्लिम धर्म के प्रभुत्व के फलस्वरूप यह परम्परा लगभग समाप्त ही हो गयी।

फोनिशिया या सिरिया में टाइरियन सिक्कों की प्राप्ति से यह प्रमाण मिलता है कि सिरिया के तट क्षेत्र में नाग पूजा विद्यमान थी। टाइर सिक्कों पर प्रायः एक वृक्ष के तने में लिपटा नाग दिखाया गया है और उसके दोनों ओर भद्दे-से दो पाषाण स्तम्भ अंकित हैं। इससे प्रमाणित होता है, कि सिक्कों के निर्माण से कहीं पहले से ही नाग पूजा इस क्षेत्र में विद्यमान थी। सर हेनरी रोलिनसन का मत है, कि बेबीलोन के त्रिमूर्ति देवों में सम्भवतः होवा नाग

देवता ही थे। बेबीलोन में नाग पूजा का स्पष्ट उदाहरण डेनियल की पुस्तक में मिलता है, जो अब अलग से एपोत्रिका में प्रकाशित होती है। इसमें डायोडोरस बेलस मन्दिर की तीन मूर्तियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रिजा के साथ चाँदी की दो बड़ी नाग मूर्तियाँ भी थीं, जिनका भार लगभग 30 टेलेंट था और देवी जुनो दाएं हाथ नागफण पर रखे खड़ी दिखाई गई थी।

रोमन सभ्यता में भी नागपूजा के उदाहरण मिलते हैं। रोम के दक्षिण में 16 मील की दूरी पर लनुवियन स्थान पर वृक्षों का एक बड़ा और घना झुरमुट था और इसके समीप आरगिव जुनों का मन्दिर था। इसी स्थान पर एक विशाल और गहरी गुफा थी, जिसमें नाग देवता का वास था। इस पवित्र स्थान की ओर प्रति वर्ष कुंआरी कन्याओं को उनकी पवित्रता परखने के लिए ले जाया जाता था। यदि नाग उनकी भेंट स्वीकार कर लेता था, तो उनकी पवित्रता सिद्ध समझी जाती थी और इस कठिन कार्य की सफलता के फलस्वरूप समझा जाता था कि वर्ष अच्छा और शुभ रहेगा। एपीरस में एक गोलाकार समाधि के चारों ओर बनी दीवार में पवित्र नाग रखे जाते थे। महान उत्सव के दिन एक कुंआरी पुजारिन नग्नावस्था में वृक्षों के झुरमुट के बीच हाथ में पवित्र भोजन लिये जाती। यदि उसे स्वीकार कर लिया तो फसल बढ़िया होने का प्रमाण समझा जाता था। यदि अस्वीकार कर दें, तो वर्ष कष्टमय बीतने का संकेत समझा जाता था।

रोम की पुराण कथा में वर्णन है कि किस तरह मिनरवा ने लाओकून को नष्ट करने के लिए दो नाग भेजे थे। अपना कार्य पूरा करने पर देवी पालास के मन्दिर की शील्ड के पीछे शरण ली। परसियस में एक वाक्य है जिसमें सैटारिस्ट आज्ञा देते हैं "दीवार पर दो नागों के चित्र अंकित किए जाएँ ताकि लोगों को यह मालूम हो, कि जगह पवित्र है।" रोम के महान योद्धा सिपियो अफ्रिकनो का विश्वास था कि उसका पालन-पोषण एक नाग ने किया। इसी तरह अगस्टस का भी विश्वास था, कि उसकी माँ ने उसे नाग से प्राप्त किया है।

रोम के सम्राट टाइविरियस ने एक पालतू साँप रखा था परन्तु एक दिन उसने देखा कि उसे चींटियों ने खा लिया है। इसके बाद उसने भारत से एक बड़ा साँप मँगवाया और उसे एथेन्स में देव जूपीटर ओलिम्पियस के मन्दिर में रखा। इसी तरह के उदाहरण सिक्कों पर नागों के अंकित करने से उपलब्ध होते हैं।

एरासमस स्टेला ने लिखा है कि सरनाशिया में बहुत समय तक कोई धार्मिक रीति प्रचलित नहीं थी। आखिर उन्होंने वृक्षों और नागों की पूजा आरम्भ की। इसी प्रकार समोजिटाई के लोग नागदेवता की पूजा करते थे। यदि कोई आपत्ति आ जाती थी, तो वे समझ लेते थे कि ग्रह देवता की पूजा ठीक नहीं हुई। लिथूनिआ के लोग भी नाग पूजा में विश्वास रखते थे। प्राग के जेरोम ने 15वीं शताब्दी में नाग भक्त नागों को बलि चढ़ाते थे। प्रत्येक घर के कोने में एक

नाग रखा रहता था, जिसे प्रतिदिन भोजन मिलता था। क्रोमर ने प्रशियन पर नाग पुजारी का अपराधी होना बताया है। नीसियस ने अपने समय में वियना नगर में नागपूजा का जिक्र किया है।

स्कैंडिनेविया देश के प्राचीन वोदन धर्म में वृक्ष तथा नाग पूजा की प्रथा प्रचलित थी। लिखित इतिहास में नागपूजा का वर्णन नहीं मिलता, परन्तु इसमें अन्धविश्वास नवीं शताब्दी तक जारी रहा। 16वीं शताब्दी तक घरेलू साँपों को स्वीडन के उत्तरी भाग में गृह देवता समझा जाता रहा। उन्हें भेड़-बकरियों का दूध दिया जाता और उन्हें मारना पाप समझा जाता। इस शीतल प्रदेश में साँपों की संख्या वैसे ही थोड़ी है, स्वाभाविक रूप से नाग पूजा नहीं फैली, बल्कि यह पूर्व से आयी होगी।

फ्रांस और इंग्लैंड में नाग पूजा का प्रचलन नगण्य रूप में बहुत प्राचीन काल में रहा होगा। स्कॉटलैंड क्षेत्र में बहुत सारे मेगालिथिक स्मारकों में शिल्पकला के अद्भुत नमूने उपलब्ध हुए हैं, जिन में प्रायः साँप स्पष्ट रूप में अंकित मिलते हैं, जिनसे यहाँ के लोकजीवन में साँपों के स्थान की झलक का आभास मिलता है, शिल्पकला के यह नमूने छठी शताब्दी के लगते हैं।

अफ्रीका द्वीप में नागपूजा उसी प्राचीन रूप में आजतक विद्यमान है। ऊपरी मिस्र में शेख हरेदी के स्थान पर नार्वेन 17:8 में गया था। उसने लिखा है— नाग को प्रसन्न करने के लिए भेड़-बकरी की बलि दी जाती थी। वर्ष में एक बार जब स्त्रियाँ नाग को देखने जातीं तो नाग अपनी गुफा से बाहर आकर जो सब से सुन्दर स्त्री होती उसकी गर्दन से लिपट जाता।

ऐबेसीनिया में चौथी शताब्दी तक नाग पूजा प्रचलित रही।

विदाह में जिन तीन देवताओं की पूजा होती है उनमें वृक्ष, सागर और साँप हैं। इनमें दान्ह को पहला स्थान प्राप्त है। वर्तमान नाग जाति के पूवर्ज आरडत छोड़कर आए थे। दान्ह देवनाग का प्रतीक मिट्टी का सींग वाला नाग जो मिट्टी के बर्तन में रखा जाता है, समझा जाता है। मुस्लिम और ईसाई धर्म के फैलाव के साथ नागपूजा कम हुई।

अमेरिका महाद्वीप में कोलम्बस के आने से पहले नाग पूजा प्रचलित थी। एजटेक पुराण कथाओं में टेजकैलीमोका उनका प्रमुख देवता माना जाता है। इस देवता की जीवन सहचरी तोनाकसीड्वा थी। मेक्सिको के मिथक में पंखों वाले साँप का वर्णन है। उसका जन्म तोलो राज्य में कुंआरी कन्या से हुआ था। अनहुवाक निवासियों को सभ्यता एवं कानून देने वाला भी वही था। उसी ने उन्हें कृषि, धातुओं का उपयोग तथा अन्य जीवन कलाएँ सिखाईं।

मैक्सिको के हुईचो इंडियन नाग को पहरेदार और रक्षक मानते हैं। इस कबीले की कृषि और वर्षा की देवी टाटेई नुआरी हुआमें का रक्षक भी कुण्डलित

नाग है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में पुरातत्ववेत्ता के अनुसार धरती के सर्पीले टीले सिद्ध करते हैं कि रेड इंडियनों की वर्तमान जाति से पहले ओहियो राज्य में नाग सम्प्रदाय के लोग निवास करते थे। बनर्ल डियाज के अनुसार मैक्सिको के मंदिर में नाग पवित्र वस्तु समझकर रखा जाता था। उन्हें बलि का शरीर खाने को दिया जाता था।

मध्य अमेरिका में पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व पनपी माया-संस्कृति के माया लोगों की पुराकथा में एक ऐसे पंख वाले साँप का जिक्र है, जो कई चमत्कार करता है। कभी वह वासुदेव बनकर कंकालों में प्राण तक फूंक देता है।

फिजी महाद्वीप समूह में भी नाग पूजा के चिह्न उपलब्ध हुए हैं। उस द्वीप के निवासियों के प्रमुख देवता में से एक नवाता की गुफा में साँप के रूप में कुंडली मारकर जीवित निवास करता है।

आस्ट्रेलिया के जंगली लोगों का विश्वास है कि एक बहुत बड़े नाग ने जब दुमें पटकाईं, तो सृष्टि की उत्पति हुई और उसके हिलने से भूचाल होता है। यह विश्वास भारत में हिन्दुओं के इस विश्वास से भी मेल खाता है कि शेष नाग जब विश्राम लेने के लिए एक फण से धरती को दूसरे फण के ऊपर रखते हैं तब भूचाल आता है। इस क्षेत्र में नागपूजा के प्रमाण जोवा में सुकु और केदल के स्थान पर भी उपलब्ध हैं।

बौद्ध धर्मग्रन्थों के अनुसार बौद्धमत के आने से पहले लंका में नागपूजा प्रचलित थी। लंका के तीन ऐतिहासिक ग्रंथों—महावन्सो, रत्नाचारी और राजाबली के अनुसार नागों को ही बौद्ध मतावलम्बी बनाया गया। जेम्स फर्गुसन के कथनानुसार आज भी इस भूखंड के आदिवासी नाग पूजा करते हैं।

प्राचीन ईरान में जोहक ही एक प्रसिद्ध राजा था, जिसे मुस्लिम इतिहास-कारों ने उसकी पीठ से दोनों कंधों पर निकलते हुए नागों से वर्णित किया है। कहते हैं इन दो नागों को सन्तुष्ट करने के लिए दो मानव बलियाँ देनी पड़ती थीं। सम्भवतः जेन अवेस्टा के तीन सिरों में दो साँपों के दिखाए गए हैं। मिडिया में ऐसा प्रतीत होता है, नाग-वंश राज्य करता था। परन्तु सिरस के बाद वह लगभग नष्ट हो गया। पर्सपोलिस के समीप नक्शे रूस्तम में ईरानी पैन्दे के उभार पर नाग पूजा के चिह्न मिलते हैं। इसमें जिस घोड़े पर देवता बैठा दिखाया गया है, उसके सूमों के नीचे अन्तिम पार्थियन सम्राट आरदेवन सिर पर दो लिपटे हुए नागों को उसे कुचलते हुए दिखाया गया है।

परन्तु नागपूजा का सबसे अधिक प्रभाव भारत से बाहर कम्बोडिया इत्यादि देशों में उपलब्ध होता है। कम्बोडिया में नाखों वात मंदिर नाग की पूजा को समर्पित है। इस मंदिर की प्रत्येक छत का कोना सात फणों वाले नाग से सजाया

गया है। इस मंदिर में अब कोई मूर्ति नहीं। हो सकता है बौद्ध प्रभाव से पहले रही हो। प्रागंण में जल सरोवर हैं। इस मंदिर की निर्माण शैली पर भारतीय प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी प्रकार जावा में भी नाग पूजा का प्रभाव भारत से गया। इनके प्राचीन राजवंश का प्रारम्भ नाग कन्या के वंशज के रूप में माना जाता है।

प्राचीन चीन के लोग पहाड़ों, ऊँचे टीलों और ऊँची जगहों को अच्छा समझते थे। उनके अनुसार वहाँ नाग रहते हैं, जिन पर उनका भाग्य निर्भर करता है। वे उसे प्रसन्नता का पिता समझते हैं। उसके लिए वे वृक्षों के झुरमुट में मंदिर बनाते रहे। केम्फर ने लिखा है कि चीन के प्रसिद्ध धर्मनेता कन्फ्यूशियस के प्रथम स्नान को नागों ने देखा। सबसे सन्तोषजनक उदाहरण चीन की एक प्रसिद्ध पुस्तक महान बादल पहियों की वर्षा जो बौद्ध धर्म के माणक ग्रथों में समझी जाती है, उसमें नागराज नंद और उपनंद का वर्णन है। आग उगलता नाग आज भी चीन का राष्ट्र प्रतीक है। विजय-यात्रा के लिए कूच करने वाले प्राचीन चीनी सम्राट अपनी सेना के ध्वज में इसी अजदेह की आकृति फहराते थे। ईसाई मत के अनुसार साँप को शैतान का प्रतीक समझा जाता है। किस तरह आदम और हव्वा स्वर्ग में रहते थे, किस तरह साँप के रूप में शैतान ने उन्हें पथभ्रष्ट किया और दोनों को स्वर्ग छोड़ना पड़ा। अन्य सभ्यताओं में साँप को दो वर्गों में बाँटा गया था, जिनमें से एक वर्ग में वह अच्छाई का प्रतीक था, परन्तु दूसरे वर्ग में उसे बुराई का प्रतीक समझा जाता था।

जापान में नाग पूजा सदियों तक प्रचलित रही है। इसी तरह माया सभ्यता के क्षेत्र में नाग को इतना पवित्र समझा जाता था कि शपथ लेने से पहले नाग प्रतिमा पर हाथ रखा जाता था। नाग की फुंकार हर जगह पहुँच जाने की क्षमता और प्राणघातक विष इन सभी विशेषताओं के कारण नाग को कई देशों में युद्ध के देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। चीन, रोम, मिस्र, नुडिया और सूडान के बीच मीरोई साम्राज्य के लोग सिंह के सिर और नाग की देह वाली आकृति के कुछ देवता की पूजा करते थे। पेडमक नामक इसी युद्ध देवता का नागसिंह मंदिर मीरोई सम्राट द्वारा ईसा से तीन सदी पूर्व बनवाया गया था। यह मंदिर आज भी अपनी उत्कृष्ट शिल्पकला के कारण विख्यात है।

पश्चिमी देशों में ईसाई धर्म के प्रचार के साथ-साथ नागपूजा के विरक्त करने के लिए ही शायद ईसाई धर्म-गुरुओं ने आदम, हव्वा और सर्प की कहानी गढ़ी। इस कहानी के अनुसार दुष्ट सर्प के षड्यन्त्र से आदम ने वर्जित फल का स्वाद चखा और उसे स्वर्ग से निष्कासित होना पड़ा। इस तरह मानवजाति के पतन का कारण सर्प बनाया गया।

इस प्रकार नाग पूजा का पात्र न होकर घृणा का शिकार बनता गया।

पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व पैट्रिक नामक एक ईसाई धर्म-प्रचारक आयरलैण्ड गए थे। उस समय आयरलैण्ड में विषैले सर्प बहुत होते थे और सैकड़ों व्यक्ति उनके शिकार बनकर अपनी जान गँवाते थे। कहा जाता है कि आयरलैण्ड को बचाने के लिए सन्त पैट्रिक ने अपने चमत्कारों से सब साँपों को इकट्ठा करके उन्हें समुद्र में डूबो दिया। आयरिश लोग कहते हैं कि उन सर्पों के असंख्य वंशज आज भी समुद्र में उत्पात मचा रहे हैं और इसी उत्पात के कारण आयरलैण्ड का तटवर्ती समुद्र कभी शान्त नहीं रहता। सन्त पैट्रिक के इस उपकार को याद करने के लिए आयरलैण्ड में हर साल 17 मार्च को 'सन्त सर्प दिवस' मनाया जाता है।

मानव और सर्प की मैत्री के नये अध्याय की शुरुआत इस बार अमेरिका से हो रही है। अमेरिका में कई ऐसे क्लब खुल गये हैं जहाँ सदस्य लोग फुरसत के समय सर्पों के साथ खिलवाड़ कर अपना मनोरंजन करते हैं। टेक्सस के स्नेक हेण्डलर क्लब के सदस्यों ने तो सार्वजनिक रूप से साँपों के विभिन्न करतबों का प्रदर्शन करना शुरू कर दिया है।

यूनान, इटली और सिसली के मारकोपुलौस ग्राम में नागों का एक गिरजा है जिसमें एज़मशन ऑफ़ अवरलेडी को नागों की रक्षक देवी समझा जाता है। प्रतिवर्ष देवी की पूजा के समय समीप की गुफा से अनेक साँप निकलते हैं, जो केवल अगस्त के बाद 40 दिन तक बाहर निकलते हैं, उसके बाद रहस्यमय रूप से अदृश्य हो जाते हैं। इन चालीस दिनों में साँप तीर्थ-यात्रियों के शरीर पर, वस्तुओं पर और जगह-जगह आ जाते हैं। कई यात्री उन्हें बोतलों में बन्द कर ले जाते हैं, परन्तु कहते है, 40 दिन बाद रहस्यमय रूप से बन्द बोतलों में से वे अदृश्य हो जाते हैं। कई बार मोटर-चालक के पहियों के नीचे जब ये साँप आ जाते हैं, तो रात को देवी उन्हें साँप को वापस करने का आदेश देती है। तब वे लोग उस गिरजा में लकड़ी पर सोने और चाँदी के सर्प चित्रित कर भेंट करते हैं।

ऐसी ही अनेक परम्पराएँ भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में प्रचलित हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. Fergusson, J	:	Tree & Serpent Worship, 1971.
2. Crook	:	Popular Religion & Folklore in Northern India, vol. II
3. Joseph Vogel	:	Indian Serpent Lore (London, 1926)
4. Grunwedel	:	Budhist Art in India, 1940
5, Edgar Thurston	:	Omens & Superstitions of South India
6. Kalhana	:	Rajatarangini (Ed. M. A. Stein) 1960
7. Stainclaud Wake	:	Serpent Worship.
8. Ditmars, R. L.	:	Snakes of the World, 1952.
9. Oldham, C.F.	:	The Sun & The Serpent, 1905
10. Justa, H.R. & Som P. Sharma	:	Folk Tales of Himachal Pradesh (Bhartiya Vidya Bhawan, 1981)
11. Ganhar J. N.	:	Jammu : Shrines and Pilgrimages
12. लालचंद प्रार्थी	:	कुलूत देश
13. डॉ. पद्मचंद कश्यप	:	कुल्वी लोक-साहित्य
14. डॉ. वंशीराम शर्मा	:	किन्नर लोक साहित्य
15. डॉ. गौतम व्यथित	:	हिमाचल प्रदेश का लोक-साहित्य
16. हरिराम जसटा	:	हिमाचल गौरव (1972)
17. हरिराम जसटा	:	लोकवार्ता में वृक्ष-पूजा (1975)